ग्रन्थकर्ताका संक्षिप्त परिचय.

संसारमें उसी मनुष्यका जन्म लेना सार्थक है जिसने इस अमूल्य नरभवरूपी रत्नको प्राप्त कर आत्मकल्याणके साथ २ विश्वमें दूसरे प्राणियोंका हित करनेमें अपना जीवन व्यतीत किया हो।

वर्तमानमें भारतके चारों तरफ विश्वव्यापी महायुद्ध बड़ी भयंकरतासे व्याप्त हो रहा है। करोडों मनुष्य इस भीषण प्रलयकारी संग्राममें मृत्युमुखमें पहुंच रहे हैं। करोडों रूपयोंकी संपत्ति क्षणमात्रमें जलाशयमें नष्ट हो रही है। एक देश दूसरे देशको विध्वंस कर रहा है, चारों ओर हिंसा बडी तीव्रतासे अपना ताण्डवनृत्य दिखा रही है। यह क्यों? वास्तवमें विचार किया जाय तो उसका प्रधान कारण क्या मिलेगा। वही—" मानवकर्तव्यविमुखता "।

मनुष्यका कर्तव्य तो क्या है, किंतु वह अपने स्वार्थकी सिद्धि के लिये व विश्वविजयी बननेकी स्वार्थपूर्ण महत्वाकांक्षासे अनेक मनुष्य, धन, देश, नगर आदिको समूल विध्वंस करनेमें रंच मात्र भी संकोच नहीं करता है। यही तो कर्तव्यविमुखता है।

मनुष्यकर्तव्योंसे विमुख होने से ही संसार में सर्वत्र हाहाकार व अशान्ति फैली हुई है। अत एव प्रत्येक मनुष्य मात्रको अपने जीवनका सदुपयोग करनेके लिये मानव कार्योंसे और कर्तव्योंसे जानकारी प्राप्त करना अत्यावश्यक है। इसी उद्देशसे पूज्यपाद सिद्धशिरोमणि धर्मोद्धारक आचार्य श्री १०८ श्री कुंथुसागरजी महाराजने विश्वके सम्पूर्ण मानव मात्रके हितकी अभिलाषासे यह " मनुष्यकृत्यसार " नामक ग्रन्थकी रचना की

है। उक्त आचार्यश्रीके सम्बन्धमें विशेष परिचय कराना सूर्यको दपिक दिखाना है।

आप परमपूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्यवर्य श्री १०८ श्री शांतिसागरजी महाराजके प्रधान शिष्य हैं। आपका जन्म बेळगांव जिले के ऐनापुर नामक ग्राममें हुआ है। आपके पिताका नाम श्री सातप्पा और माताका नाम श्री सरस्वती था। आपका जन्मका नाम श्री रामचन्द्रजी था। बाल्यावस्थामें ही वैराग्यके अद्भुत रंगमें रंगे हुए होनेसे आपके भाव सांसारिक भोगोंसे विरक्त होने के थे। बाल्यावस्थामें ही विद्याभ्यासमें आपकी बडी रुची थी। विद्यालयमें भी आप संपूर्ण विद्यार्थियोंसे अत्यन्त प्रेम भाव रखते हुए विद्याभ्यास करते थे। उस समय अन्य विद्यार्थी गण भी आपके प्रेम व वात्सल्यसे स्वयं रामचंद्रजीकी तरफ आकर्षित होते थे। उस समय भी रामचंद्रजी निरन्तर इस प्रकार चिंतवन करते थे कि कब मैं इन सांसारिक बंधनोंसे मुक्त होकर सर्वसंगपरित्यागी बनकर स्वपरकल्याण करूंगा। अर्थात् आपके विचार सांसारिक कार्योंसे विरक्त थे और विवाहादिमें फंसना सर्वथा नहीं चाहते थे। किंतु आपने माता व पिताके सत्याग्रह से इच्छा नहीं होनेपर भी मजबूर होकर ब्रह्मचर्याश्रमसे गृहस्थाश्रमें प्रवेश किया अर्थात् प्रथमश्रेणीसे द्वितीय श्रेणीमें प्रवेश किया। उस अवस्थामें भी श्रीरामचंद्रजी हमेशा तत्वचर्चा, परोपकार आदि सत्कार्यमें सतत लीन रहते थे। और कोई दुर्व्यसन तो आप स्वप्नमें भी नहीं करते थे एवं गृहस्थाश्रममें भी आप सबसे प्रेम व वात्सल्य रखते थे। इससे रामचंद्रजीके ऊपर अन्य मनु-

ध्योंका प्रेम सहज ही उत्पन्न होता था और होना ही चाहिए,क्यों कि निःस्वार्थ प्रेमसे अन्य मनुष्य भी स्वयं आकर्षित हो जाते हैं। उस समय आपके श्वसुरजीके कोई संतान नहीं होने से वे रामचंद्रजीको ही उत्तराधिकारी बनाना चाहते थे। किंतु आप [रामचंद्रजी] स्वयं अपनी ही सम्पत्तिको छोडना चाहते थे फिर अन्य संपत्तिको कैसे स्वीकार कर सकते थे ?। इसी प्रकार शनैः २ सांसारिक भोगोंसे विरक्त होते हुए आप गृहस्थावस्था छोडकर वानप्रस्थ बने। आपने वानप्रस्थावस्थामें कई दिन रहकर के स्वपर उन्नति की। तदनंतर समस्त बाह्य और आभ्यंतर परिग्रहका त्यागकर आत्मोत्पन्न अविनाशी सुखको प्राप्त करानेवाली वीतराग दीक्षा ग्रहण की अर्थात् परमहंस सन्यासी हुए। तदनंतर आपने स्वल्प समयमें ही अपने चारित्रबलसे व्याकरण, न्याय, साहित्य, आदि विषयोंमें पर्याप्त विद्वत्ता प्राप्त की। आपकी विश्व-कल्याणकारी विद्वत्तापूर्ण हृदयग्राही उपदेशको श्रवण कर बडे २ विद्वान् भी मुक्तकंठसे प्रशंसा करते हैं। आचार्यश्रीके उपदेशसे जो संसारका कल्याण हो रहा है वह वचनातीत है। आपके ही प्रभाव से तारंगाजी एवं पावागढमें दिव्य मानस्तंभका निर्माण होकर पंचकल्याणिक प्रतिष्ठायें हुई है एवं गिरनारजीपर मानस्तंभ तैयार हो रहा है।

आचार्य श्री कुंथुसागरजी महाराजने चतुर्विध संघ सहित गुजरात,मालवा,मेवाड, आदि देशोंमें भ्रमण कर अपने दिव्य ज्ञानामृतका पान कराते हुए अनेक मानव समाजका उद्धार किया है।

अनेक वर्षोंसे आपश्रीका विहार गुजरात और मेवाडमें हो रहा है जहां प्रत्येक आबाल वृद्धके मुखसे यह वचन निकल रहा

है कि साधु हो तो ऐसा हो, जो अपनी विद्वत्ता, तपप्रभाव व अलौकिक शांतिके द्वारा दुनियाको चकित करदेवें, एवं अपने प्रभावसे अधःपतनके गर्तमें पडे हुए प्राणियोंको हस्तावलम्बन दें। धन्य हैं कुंथुसागर महाराज !

नरेंद्रवंद्यत्व.

आप पूज्यश्री केवल लोकपूजित ही नहीं है अपितु आपके दिव्य प्रभावसे अनेक सस्थानोंके राजा आपके परमभक्त बने हैं। सदा आपकी सेवामें पहुंच अपने हितकी बात पूछा करते हैं।

सुदासना नरेश, टींम्बा नरेश, ईडर नरेश, विजयनगर, बडोदा आदिके नरेन्द्र उक्त आचार्य महाराजके परमभक्त हैं। इसी प्रकार बलासना, मोहनपुरा, माणिकपुरा, पेथापुर, अलुवा ओराण डूंगरपुर आदि अनेक स्थानोंके नरेश आपके तत्वोपदेशको श्रवण करनेके लिए लालायित रहते हैं। अपने २ राज्योंमें पूज्यश्रीके संघका उक्त नरेशोंने परमादर पूर्वक स्वागत कर गुरुभक्तिको व्यक्त किया है।

अनेक स्थानों पर आचार्यश्रीके द्वारा वर्षोंका आपसी वैमनस्य दूर होकर शांति स्थापित की गई है।

पूज्यश्रीके भाषणमें इतना आकर्षण है कि उसमें हिंदू, मुसलमान, क्रिश्चन आदि प्रत्येक कौमके लोग बडी चाहसे उपस्थित होते हैं।

बडे २ शहरोंमें पब्लिक भाषण आपके हुए जिसमें हिन्दु, मुस्लिम, जैन, राज्य-कर्मचारी व पदाधिकारी सब आपके भाषणोंसे लाभ उठाते थे। पिछले दिनमें बडोदा राज्यके राजकीय न्याय-मंदिरमें पूज्यश्रीका जो सार्वजनिक भाषण हुआ, उस समय कई हजार जनताके अलावा बडोदा स्टेटके प्रधान दीवान श्री सर

बडोदा राज्यके न्यायमंदिरमें आचार्यश्रीका पब्लिक भाषण.

जिसमें राज्यके दीवान श्रीसर कृष्णमाचारी के. सी. एस. आई. भी उपस्थित हैं।

कृष्णमाचारी के. सी. आय. ई. स्वयं उपस्थित थे । एवं अनेक राज्यपदाधिकारी उपस्थित थे । वह प्रसंग बडोदाके इतिहासमें सुवर्णाक्षरोंमें लिख रखने योग्य है । आचार्यश्रीके मधुर हृदयग्राही, सरस व्याख्यानसे जनतापर आशातीत प्रभाव पड़ता है व धर्मकी जागृति हो रही है । आपने अपनी माता सरस्वतीका नाम सार्थक कर दिखाया है । क्योंकि आप अपने नाम तथा कामसे सरस्वती पुत्र ही सिद्ध हुए है ।

ग्रंथनिर्माण.

विश्वकल्याणके लिए ही आपका जन्म हुआ है । इसलिए आप दिनमें घंटों मौनसे व्यतीत कर ग्रंथनिर्माणका कार्य करते हैं जिनके स्वाध्यायसे प्राणियोंका परोक्षमें भी कल्याण हो रहा है ।

आपने " मनुष्यकृत्यसार " के समान चतुर्विंशतिजिनस्तुति, शांतिसागर चरित्र, बोधामृतसार, मोक्षमार्गप्रदीप, निजात्मशुद्धिभावना शांतिसुधासिंधु, ज्ञानामृतसार, सुधर्मोपदेशामृतसार, आदि अनेक नीतिपूर्ण, सत्यधर्मको जगानेवाले ग्रंथों को रचना कर संसारका महत् उपकार किया है । आचार्यश्रीकी ग्रंथनिर्माणशैली अद्वितीय है । आगमके तत्वोंको आधुनिक रीतीसे स्पष्टीकरण करनेमें आप सिद्धहस्त हैं । आपका भाषण प्रतिभा, शान्त व गंभीर मुद्राके सामने बडेर राजाओंके मस्तक झुक जाते हैं। आपके उपदेशोंके प्रभावसे अबतक लाखों मनुष्य मांस, मदिरा आदिका त्याग कर नियमी हुए हैं । और लाखों संस्कारोंसे संस्कृत हुए हैं । आचार्यश्रीके कार्य व आपके द्वारा होनेवाली धर्मकी अलौकिक प्रभावनाको देखनेसे पूर्वाचार्य श्रीमत्पूज्यपाद, कुंदकुंद स्वामी, समंतभद्र, अकलंक, आदिका स्मरण आता है । अर्थात् आचार्य-

श्रीके समस्त कार्य पूर्वाचार्योंके समान हैं। गुजरात प्रांतमें जो आपने धर्मकी अपूर्व जागृति की है वह तो प्रशंसनीय है किन्तु और भी देशोंमें आपने अहिंसाका प्रचार किया है। अनेक स्थानोंमें व राज्योंसे आचार्यश्रीके जन्मके दिन धूमधामसे उत्सव मनाकर अहिंसादिन मनानेकी राज्यद्वारा घोषणा होकर फर्मान निकले हैं। एवं आपकी जयंती सार्वजनिक रूपसे मनाई जा रही है।

इस प्रकार आपके द्वारा इस समय विश्वका जो उद्धार हो रहा है, उसका यहांपर दिग्दर्शन मात्र किया है। क्रमसे लिखनेपर एक बडी पुस्तक ही बन जायगी। आपके द्वारा जो जनताका हित हुआ है वह सचमुचमें न भूतो न भविष्यति है।

मनुष्यकृत्यसार.

आचार्यश्रीने इस भूमंडलमें मार्ग भूलकर इधर उधर भटकने वाले मानवोंके हितके लिए ही इस ग्रंथका निर्माण किया है। गतवर्ष आचार्यश्रीका चातुर्मास डूंगरपुर राज्यमें हुआ। वहांपर अलौकिक धर्म प्रभावना हुई। वहीं पर इस ग्रंथकी रचना हुई है। वहांके राजा श्रीमान् सरकार रायरायां महीमहेंद्र महाराधिराज, महारावळ, प्रजापालक धर्मवीर, न्यायनीतिनिपुण, अनन्य गुरुभक्त, **श्री सर लक्ष्मणसिंहजी** साहिब बहादुरजी दामइकबालहू के. सी. एस. आई., डूंगरपुर–नरेशने अपनी प्रजा, राज्यपरिवार, सहोदर व राजमाताके साथ जिस निष्ठता व परमादरके साथ आचार्यश्रीकी भक्ति की है वह अनंत कालतक इस भूमंडलमें कीर्ति रूपमें अंकित रहेगी। डूंगरपुरके दरबार, प्रजाहितरक्षक, परमधार्मिक, साधु संतोंके आदर करनेवाले विद्वान् हैं। इसलिए आपने अपने राज्यमें आचार्य संघका अपूर्व आदर किया है, इतना ही नहीं समय समय पर आचार्यश्रीकी सेवामें पहुचकर तत्वोपदेशसे लाभ उठाते थे। इससे भी अधिक इस ग्रंथकी पहिली आवृत्ति डूंगरपुर दरबारके

द्वारा ही प्रकाशित होकर जनताके हितार्थ वितरितकी गई थी। इसीसे आपकी गुरुभक्ति, न्यायनिष्ठता व विवेक पूर्ण हृदयका पता लगता है।

दूसरी आवृत्ति.

लोकप्रियताके कारण इसकी पहिली आवृत्तिकी प्रतियां शेष न रही। अत एव दूसरी आवृत्ति श्री धर्मनिष्ट **सेठ मगनलालजी हीपचंदजी** वांसवाडा, [जिनका परिचय अन्यत्र दिया गया है] की ओरसे प्रकाशित की गई है। दोनों भ्राता रामलक्ष्मणके समान परस्पर प्रेमसे रहते हैं। परमधर्मात्मा हैं। गुरुभक्तिमें तल्लीन हैं। इस चातुर्मासमें आचार्य संघकी खूब सेवा कर जीवनको सफल बनाया है। उन्हींकी ओरसे पाठकोंकी सेवामें हम इस ग्रंथरत्नको उपस्थित कर रहे हैं। इसलिए वे दोनों धर्मनिष्ठ महोदय धन्यवादके पात्र हैं।

इसी प्रकार इस ग्रंथके संस्कृत हिंदी अनुवादमें पं. गणेशीलालजी न्यायतीर्थने और अंग्रेजी अनुवाद में श्री अण्णाजी श्रीकृष्ण मूळकूटकर M A B. T D Pe ने साहित्यप्रेमसे एवं गुरुभक्तिसे प्रेरित होकर सहायता दी है। एतदर्थ उनके हम हृदयसे आभारी हैं। अंग्रेजी पढनेवालोंको भी ग्रंथका लाभ हो इस हेतुसे श्लोकोंका अंग्रेजी भाषांतर अंतमें दिया है।

इस प्रकार परमपूज्य प्रातःस्मरणीय आचार्यश्रीकी यह अमूल्य ग्रन्थरत्न विश्वके हितकी भावनासे प्रकाशमें लाया गया है। आशा है कि जनताको इसका यथेष्ट उपयोग होगा एवं तद्रूप आचरण होकर ग्रंथकर्ताका श्रम सफल होगा तथा प्रकाशकजीके व्ययका सदुपयोग होगा। इति

गुरुचरण सरोजचंचरीक

सोलापूर
वीरनिर्वाण
२४७०

वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री.
ऑ. मंत्री—आचार्य कुंथुसागर ग्रंथमाला.

श्रीमान् सेठ मगनलालजी दीपचंदजी गांधीका

संक्षिप्त जीवन चरित्र.

धर्मनिष्ठ श्रीमान् सेठ गांधी मगनलालजी दीपचंदजी चंपालालजीके पुत्ररत्न हैं। आपकी पूज्य मातुश्रीका नाम चपाबाई था। आपके स्वर्गीय पिता चपालालजी एक धर्मनिष्ठ व आत्मनिष्ठ नरपुंगव थे। आपने अपनी दीर्घदृष्टिसे एवं व्यवहारकुशलतासे व्यापारके कामको उन्नतिके पथपर पहुंचा दिया और श्रीमंत पुरुषोंमें अग्रणी बने। आपने अपने दोनो पुत्रोंको भी अपने ही समान गुणोंसे अलंकृत करनेमें अकथ परिश्रम किया और आपको इसमें पूर्ण सफलता भी मिली। साथ ही साथ आपने अपने दोनो लघु भ्राताओंको भी घनिष्टतम संबंधमें रखकर उनको भी अपने ही समान वैभवशाली बना दिया। आपने अपने सद्व्यवहारसे और नम्रतासे जनताका हृदय आकर्षित किया और लोकप्रिय बने। यहांतक कि आपने वर्तमान नरेशके प्रति भी अपूर्व राजभक्तिका परिचय दिया। आपकी धर्मनिष्ठता और राजभक्तिसे प्रसन्न होकर हिज हाईनेस रायरायां महाराजाधिराज महारावलजी साहेब श्री सर पृथ्वीसिंहजी बहादुर के सी. आय. ई वर्तमान वांसवाडा नरेश द्वारा आप सम्मानित किए गये। आपकी अकस्मात मृत्यु होजानेसे आपके बहुतसे धार्मिक कार्य अपूर्ण रह गये। मृत्युके समय आपने विविध तीर्थ क्षेत्रोंको व बागड प्रांतके अनेक मंदिरोंको करीब १०००) एक हजार रुपया दानमें दिया। और २०००) दो

मनुष्यकृत्यसारके प्रकाशक—

सेठ मगनलालजी व श्री. सेठ दीपचंदजी.

हजार तोले चांदीकी गमगोटी बनवाकर बांसवाडामें श्रीऋषभदेवजीके मंदिरमें भेंट करनेका संकल्प किया था । वह शीघ्र ही बनकर तैयार होनेवाली है । आपकी मृत्युके बाद वही राज्य मान्यता आपके जेष्ठ पुत्र गान्धी मगनलालजी को श्रीमान् बांसवाडा नरेशद्वारा प्रदान की गई । आप स्टेट लेजिस्टेटिव कौन्सिल, कामरशियल बेंक व म्युन्सिपालटिके ऑनरेरी मेंबर भी है । आपने अभी ही श्री वासुपूज्य भगवानके मंदिर में अपनी ओरसे ७२५) सातसौ पच्चीस रूपयोंमें ध्वजा दन्ड चढाया है व आपने दशलक्षणी व रत्नत्रत आदि भी किये हैं जिनका उद्यापन भी आपने अभी कराया है । आप दोनो युगल भ्राताओंने आचार्य कुंथुसागर स्कालरशिपफन्ड बांसवाडामें पांच पांच सौ रुपया प्रत्येकने प्रदान करके विद्यादानके प्रति अगाध प्रेम प्रगट किया है। गुरुभक्तिसे प्रेरित होकर इस मनुष्यकृत्यसार नाम ग्रंथकी दूसरी आवृत्ति दोनों भ्राताओंने अपने निजद्रव्यसे छपवाकर आत्म एवं विश्वकल्याण करनेवाले साहित्यके प्रति कितना अगाध प्रेम प्रदर्शित किया है यह सहजमें ही मालूम पडता है और समय २ पर आपने वात्सल्य और प्रभावना अंग को भी पालन करनेका परिचय दिया है। स्थान २ में जाकर मुनियों के दर्शन भी किये हैं व आहार दानका लाभ भी लिया है । आपको संतसमागम अतिप्रिय है । धार्मिक संस्कारोंकी सुगन्धी आप व आपके कुटुंबी जनोंमें सुरभित हो रही है । गुरुभक्तिमें आपका विशेष अनुराग है । जैनसाहित्यकी सेवामें आप सदा

तत्पर रहते हैं। आप दोनों भ्राता आचार्य कुंथुसागर ग्रंथमालामें १०१) प्रदान कर स्थायी सदस्य बने हैं। आपने और आपके कुटुंबी जनोंने जो आचार्य संघकी जो सेवा की है वह चिरस्मरणीय है। इस प्रान्तमें कन्या विक्रयका बाजार गरम रहनेपर भी आपके घरानेमें यह कुप्रथा बिलकुल नहीं है।

आप दोनों भ्राताओंका परिवार निम्न प्रकार है—

सेठ मगनलालजीके तीन पुत्र और तीन पुत्रियां हैं। सेठ दीपचंदजीके एक पुत्र व एक पुत्री है। दोनों भ्राताओंकी दोनों धर्मपत्नियां भी सदा धर्मकार्यमें सहायता देती हैं। वे महिला समाजकी अग्रणी हैं। आप दोनों भ्राताओंके सभी पुत्र विद्याभ्यास करते हैं। आपका सभी परिवार पूर्वजोंके समान धार्मिक है। आप दोनों भ्राता सपरिवार सानंद दीर्घजीवन व्यतीत करें एवं आपके हाथसे इससे भी अधिक सत्कार्य हों, यही जिनेंद्र चरणमें प्रार्थना है।

आपका गुणानुरागी मित्र—

सज्जनलाल जैन

असिस्टंट पोस्टमास्टर बांसवाडा.

—×**×—

संघी मोतीलाल मास्टर

बांसवाडामें आचार्य कुंथुसागर महाराजका सार्वजनिक भाषण होरहा है.

श्री तपोनिधि आचार्य कुंथुसागरविरचित

मनुष्यकृत्यसार ।

मंगलाचरण.

निरंजनं शिवं नत्वा, विष्णुं बुद्धं जिनं मुदा ॥
तथा शान्तिसुधर्मौ च, शिक्षादीक्षावरप्रदौ ॥ १ ॥
मनुष्यकृत्यसारोऽयं, ग्रन्थः सच्छान्तिदः सदा ॥
लिख्यते स्वात्मनिष्ठेन, कुंथुसागरसूरिणा ॥ २ ॥ युग्मम्.

व्याख्या—निरंजनं, निष्कलंकं, अर्थतः वीतरागं, नामतस्तु स कोऽपि भवतु शिवः शंकरः, विष्णुः विशति अनन्तज्ञानादि लक्ष्मीमिति विष्णुः, बुद्धः, सुगतः, जयति रागादीनिति जिनः इत्यादि सहस्रैरपि संबोधनैः प्रसिद्धं तं इष्टदेवं, मुदा हर्षेण, नत्वा प्रणम्य, तथा एवं प्रकारेण, शान्तिश्च सुधर्मश्च, तौ, श्री शान्तिसागर सुधर्मसागरनामानौ शिक्षादीक्षावरप्रदौ, उभावपि गुरू प्रणम्य सदा सततमेव, न तु यदाकदाचित्, समीचीनां शान्ति ददातीत्येवं भूतः, अयं प्रकृतः ग्रंथः, " मनुष्यकृत्यसार " इति सार्थकनामधेयः, स्वात्मन्येव निःशेषेण तिष्ठतीति तेन, श्री कुंथुसागराचार्येण लिख्यते, विरच्यते ।

अर्थ—निरंजन ! निर्विकार देवको, चाहे उसे नाम से शिवशंकर, विष्णु, बुद्ध जिन कुछ भी कहो, उनको हर्षपूर्वक नमस्कार करके तथा दीक्षा गुरु श्रीआचार्य शान्तिसागरजी शिक्षा गुरु श्री मुनिराज सुधर्मसागरजीको भी नमस्कार करके, आत्मामें ही जिसकी निष्ठा है, ऐसा मैं कुंथुसागराचार्य " मनुष्यकृत्यसार " नामक सार्थक सदा सच्ची शान्तिको देनेवाले इस ग्रंथको रचता हूं ।

भावार्थ—आज समस्त मानव केवल नामसे लड़ रहे हैं, और धर्मके नामपर अधर्म कर रहे हैं जो कि मनुष्योचित नहीं है । इसलिये आचार्यश्रीने प्राणीमात्रका जो धर्म है सो ही बताया कि नामसे कोई भी हो चाहे खुदा, पीर, विष्णु, ब्रह्मा कोई भी हो किंतु निर्विकार, निरामय वीतराग, चिदानंदस्वरूप, परमात्मा परमानन्द सुखमें निमग्न देवको ही आत्माकी शुद्धिके लिए प्रत्येक दिन प्राणियोंको भजना चाहिए ।

ग्रन्थकर्तुः प्रतिज्ञा.

सत्कृत्यानि मुदा वक्ष्ये, प्राणिनां पुण्यहेतवे ।
तानि कृत्वा शिवं यान्तु, भव्या भावोऽस्ति सद्गुरोः ॥३॥

संस्कृतार्थ—प्राणिनां, जीवानाम् पुण्यहेतवे, पुण्य, सुकृद्धर्नमेव हेतुःकारण यस्मिन् तस्मै, मुदा हर्षातिरेकेण, सत्कृत्यानि समीचीनकर्तव्यानि वक्ष्ये, प्रतिपादयिष्ये, तानि कृत्वा, विधाय

भव्याः, भवितुं योग्या, भद्रपरिणामिनो जीवाः, शिवं यान्तु कल्याणं प्राप्नुवन्तु इति सद्गुरोः वीतरागस्य पक्षपातरहितस्य वा भावोऽस्ति अभिप्रायोऽस्ति, न तु लौकिकलाभादिप्राप्तिहेतोः।

अर्थः—सर्व प्राणियोंको पुण्यकी प्राप्ति हो और उनको आचरण करके सरल परिणामी सब जीव कल्याण को प्राप्त करें, इसलिये मैं उन पवित्र कर्तव्योंका विवेचन करूंगा, ऐसा श्री सद्गुरूका अभिप्राय है।

प्रश्न—वद मे प्राणिमात्राणां, कति कृत्यानि सन्ति को।

हे गुरुदेव! मुझे बताओ प्राणिमात्रके कितने कर्तव्य हैं?

उत्तर—सप्तैव प्राणिमात्राणां, कृत्यानि सुखदानि च।

भावार्थ—प्राणिमात्रको सुख देनेवाले सात ही कर्तव्य हैं।

कानि तत्सप्तकृत्यानि, तेषां सल्लक्षणं वद।
तानि ज्ञात्वा यथाशक्ति, करोमि सिद्धये सदा ॥१॥

संस्कृतार्थ—पुनरपि प्रार्थयति जिज्ञासुशिष्यः भो गुरो! कानि तानि सप्त कर्तव्यानि, तेषां किं लक्षणं, कानि नामानि इति वद, निरूपय। यतोऽहं तानि विज्ञाय सिद्धये साध्यसंपादनार्थं, तानि कर्तव्यानि, शक्त्यनुसारं सदा समाचरामि।

अर्थ—जिज्ञासुशिष्य पुनः पूछता है कि हे गुरुदेव! उन सातों कर्तव्योंका नाम और स्वरूप क्या है सो समझाइये ताकि उनको जानकर सिद्धिके लिये यथाशक्ति सदा आचरण करूं।

भावार्थ–दुनियामें अनेक कर्तव्य हैं किन्तु जिससे स्व–पर कल्याण होता हो उसीका नाम कर्तव्य है, और उन कर्तव्योंको पालनेके लिये समस्त मानव जातिको सम्बोधन करके आचार्यश्रीने कहा है सो उचित ही है। क्यों कि सत्पुरुष निष्प्रयोजन कार्य किसीको नहीं बताते।

तानि च सप्तकर्तव्यानि निरूपयन्ते

विद्याभ्यासश्च सत्सेवा, दानं नीत्या धनार्जनम् ।
स्वविचारः प्रभोः स्तोत्रम्, सर्वदेशे समा मतिः ॥ ४ ॥

इत्येतानि सुकृत्यानि, प्रोक्तानि सुखदानि च ।
सर्वेषां प्राणिमात्राणां, सर्वदा शांतिहेतवे ॥ ५ ॥ युग्मं.

संस्कृतार्थः–पूर्वं यानि कर्त्तव्यानि प्रोक्तानि तानि निम्नांकितानि विद्यन्ते । (१) प्रथमं कर्त्तव्यं तु विद्याभ्यासः, व्याकरण, न्याय, ज्योतिषादि तथा च राष्ट्रभाषादि सद्विद्यानां पठनं। (२) द्वितीयं तु सत्सेवा अर्थात् विद्याविशारदसद्गुरूणां गुणगुरूणां च तथा विश्वस्य प्राणिमात्राणां सेवाकरणं । (३) तृतीयं तु दानं, सद्गुरुभ्यश्च दीन संकटापन्न-बुभुक्षुजीवेभ्यः भोजनं वस्त्राहारादिप्रदानं । (४) चतुर्थं कर्त्तव्यं नीत्या धनार्जनम् न्यायेन स्वकुटुम्बादिपोषणार्थं वाणिज्यादिना धनोपार्जनम् कर्त्तव्यं। यतः धनेन विना धर्मादिकार्यं तथा दानादि-महत्कार्यं मानवाः नैव कर्तुमर्हन्ति । अतः स्वपरकल्याणार्थं न्यायेन धनोपार्जनमपि मानवानां प्रधानं कर्तव्यं वरीवर्ति । (५) पंचमं कर्तव्यं तु स्वविचारः आत्मविचारः कोहं, को मम धर्मेत्यादि-

विवेकेन संयुक्तः । (६) षष्ठं कर्तव्यं तु प्रभोः स्तोत्रम् भगवतो वीतरागस्यः गुणस्तवनम् । (७) सप्तमं तु सर्वदेशे समा मतिःसर्वस्मिन् देशे सर्वदेशे, समा मतिः समाना बुद्धिः अर्थात् संपूर्णदेशस्य प्राणि-मात्रेषु साम्यभावधारणं इति सप्तमं कर्त्तव्यं ।

इत्येवं प्रकारेण सप्तसत्कृत्यानि सप्त समीचीन कार्याणि, कीदशानि तानि सुखदानि सुखं आनंदं ददातीति सुखदं तानि सुखदानि सर्वेषां प्राणिमात्राणां निखिल सत्वानां सर्वदा निरंतरं शांतिहेतवे अर्थात् शांतिकरणार्थं प्रोक्तानि प्रतिपादितानि ।

अत्र खलु ग्रन्थकर्तुरयमेवाभिप्रायो विद्यते, यत् अयं "मनुष्यकृत्यसाराख्यः" ग्रंथः सम्पूर्णमानवमात्राणां हितार्थमेव विलिख्यते । न किल कस्यचिज्जातिवर्णसमाजविशेषस्य हितार्थं विरच्यते । अतः संपूर्णमनुष्यवृन्दैः ग्रन्थेषु प्रतिपादितकर्तव्यानि सम्यक्प्रकारेणाधीत्यास्य ग्रन्थस्य सदुपयोगो कर्तव्यः ।

एतेषां सर्वेषां कर्त्तव्यानामग्रे पृथक् पृथक् स्पष्टीकरणपूर्वकं वर्णनम् क्रियते ।

अर्थ—वे सात कर्तव्य निम्न प्रकारके हैं ।

विद्याभ्यास, सत्सेवा, दान, धनोपार्जन, आत्मविचार ईश्वर स्तवन, सपूर्ण देशके प्राणियोंमें साम्य भाव । इस प्रकार सुखको देनेवाले, संपूर्ण प्राणिमात्रके निरन्तर कल्याणके लिए ये कर्तव्य कहे गये हैं इनका अलग अलग खुलासा आगे करते हैं ।

—x—

पहला कर्तव्य विद्याभ्यास

येन केनाप्युपायेन, विद्याभ्यासः सुखप्रदः ।
प्राणिमात्रैः पुरा कार्यः सर्वेषां शान्तिहेतवे ॥ ६ ॥
विद्याहीन वृथा रूपं, वेषभूषादिर्जीवनम् ।
चन्द्रहीना वृथा रात्रिः, निर्गंधं कुसुमं भुवि ॥ ७ ॥

संस्कृतार्थ—पुरा, सर्वप्रथमं तावत्, येन केनापि उपायेन, प्राणिमात्रै अखिलैरपि जीवजातैः सुखं हितं प्रददातीत्येवं भूतः विद्यायाः अभ्यासः कार्यः कर्तव्य एव, यस्माद्धि, सर्वेषां स्वेषां परेषां च शान्तिरात्मलाभः भवेत् । विद्या विना ज्ञानमन्तरेण रूप सौन्दर्यं वृथैव, वेषः बहुमूल्य वस्त्रादिसज्जा, भूषा: अलङ्कारादि परिधानं, आदि शब्दात् सुगन्धादिलेपनं इत्यादिभिर्युक्तमपि जीवनम् निष्फलम् । यथा च चन्द्रहीना रात्रिर्न शोभते, भुवि लोके निर्गन्धं गन्धविहीन कुसुम पुष्पं न शोभते, तथैव विद्याविहीनं जीवन न विभाति ।

अर्थ—प्राणिमात्रका सबसे पहला कर्तव्य है कि, जिस किसी उपाय से विद्याका अभ्यास करे, क्यों कि सुखदायक एव व्यक्ति तथा समाज, सर्वत्र शांति विधायक वस्तु विद्या ही है । जैसे चन्द्रमा विना रात्रिकी तथा गन्ध हीन पुष्पकी शोभा नहीं होती, उसी प्रकार वेष भूषण, अलङ्कार, आडम्बर आदिसे जीवन सुन्दर नहीं हो सकता है विद्या विना ये सभी वृथा हैं । विद्यासहित सब वेषादि सफल हैं ।

भावार्थ—सुख और शांति, ये दो बातें सभी प्राणियोंको इष्ट हैं । किन्तु मानव प्राणिके सिवा अन्य प्राणियोंकी

योग्यता इन वस्तुओंके पानेकी बहुत कम है। मनुष्य भी अपनी उस योग्यताका विकास. विद्याके बिना नहीं कर सकता है। इस अन्धकारपूर्ण संसारमें विद्या ही एक सच्चा दीपक है. जो मनुष्यको विनाशके पथसे बचा कर सच्चा मार्ग प्रदर्शित करता रहता है। इसलिये जैसे बने तैसे, विघ्न और बाधाओंको सहते हुवे भी विद्याका उपार्जन करना चाहिये, विद्या ही सच्चा और सबसे अच्छा धन है, जहां दुनियाकी सब धन, दौलत, ताकत आदि सब वस्तुएँ बेकार साबित होती हैं वहां पर विद्या ही अपना चमत्कार दिखाती है।

इस विद्याकी तरफ विशेष कर राजा महाराजा आदि बड़े पुरुषोंको ध्यान रखना परम कर्तव्य है। देशमें कोई भी मनुष्य विद्यासे हीन न रहे जिससे समस्त मानव जाति सुखी रहे।

विश्वजननी संस्कृत भाषा तथा स्वानन्दसाम्राज्यसुख प्रदायिनी आध्यात्मिक विद्या तथा ज्योतिष, व्याकरण, वैद्य विद्या, साहित्य, एवं सर्व ऋतुओंमें फल फूल व अनेक प्रकार की सुखदायी धान्योपार्जन करनेवाली कृषी विद्या, तथा कृषी कार्य करने योग्य अनेक यन्त्र विद्या, ऐसे ही जैसी जैसी जिनकी बुद्धि हो उसके अनुसार प्राणियोंको शिक्षा देना अत्यावश्यक है जिससे समस्त विश्व सुखी व स्वर्गीय जीवके समान आनन्दसे रहें। पूर्वोक्त कर्तव्य समस्त मनुष्यमात्रको स्वयं करना व कराना चाहिये। यही " मनुष्यकृत्यसार " है।

द्वितीयः कर्तव्यः सेवा.

देवानां च गुरूणां स्यात्सेवा स्वर्मोक्षदायिनी ।
अतएव सदा कार्या, भक्त्या विघ्नविनाशिनी ॥ ८ ॥
दीनानाथादिजीवानां सेवा शक्तिप्रमाणतः ।
कार्या वा स्वात्मबन्धूनां, मिथः प्रेमविधायिनी ॥९॥

संस्कृतार्थ—द्वितीय कर्तव्यतया सेवां निर्दिशन्नाचार्यः अस्या महत्वं सूचयति. देवो वीतरागः, सर्वदूषणदूरः, गुरुर्विषयाशा-वशातीतः,एवंभूतानां देवगुरूणां सेवा परिचर्या,स्वर्मोक्षसुखदायिनी, विघ्नविनाशिनी च स्याद्भवेदेव, अतएव सदा भक्त्या विनयेन कार्या विधातव्या । शक्तिमेकं,बलानुसारेण,दीन अनाथादि जीवानां,न विद्यते नाथः स्वामी येषां ते, आदि शब्देन दुर्बलविपन्नरोगादिग्रस्तानामपि ग्रहणम्, मुदा हर्षपूर्वकं कार्या अथवा स्वस्य, आत्मनः, बन्धूनां च, कुटुम्बदेशजातीयबन्धूनामपि सेवा मुदा कार्या, एषा हि मिथः परस्परं प्रेमविधायिनी भवति ।

अर्थ—वीतराग देव एवं गुरुओंकी सेवा स्वर्ग और मोक्षके सुख देनेवाली एवं विघ्नोंका विनाश करने-वाली होती है। इसलिये इनकी सेवा सदा भक्ति और विनयसे करनी चाहिये, तथा अपनी शक्तिके अनुसार अनाथ,दीन, रोगी तथा विपत्तिमें फंसे जीवोंकी भी सेवा करनी चाहिये । कुटुम्बी तथा देश एवं जातिके बन्धुओंकी भी यथाशक्ति सेवा अवश्य करनी चाहिये। क्योंकि इससे परस्परमें प्रेम रहता है ।

भावार्थ--जो जैसी वस्तुकी सेवा करता है वैसा ही उसको फल मिलता है। इसलिये जो सब विघ्नबाधाओंको पार करके अपनी वीतरागतासे परम उच्च पदमें प्रतिष्ठित हो गये हैं, ऐसे देव, गुरुकी सेवा करता है, उसे स्वर्गादि पदवी मिलेगी ही. ऐसी समुज्वलसेवासे कोई भी उच्च पदवी सहज प्राप्त हो सकती है। तथा जो अपनी शक्ति श्रद्धाके माफिक प्रसन्नताके साथ अपने कुटुम्बी, जातिबन्धु, देशबन्धु, तथा दीन, दुखी, अशक्त, रोगी तथा अन्य भी प्राणियोंकी निःस्वार्थ सेवा करता है, वह सबका प्यारा होता है, सर्वप्रिय होनेके कारण उसके सब काम भली भांति हो जाते हैं। विघ्नबाधा नहीं आती। इसलिये ऐसा प्राणी सदा सुखी रहता है। इसलिये सेवाको अपना सर्वस्व समझना चाहिये तथा यह शरीर केवल हाड मांसका पिंजर है। इससे लौकिक कल्याण करनेवाली कोई भी चीज नहीं निकलेगी।

पशु यदि मर जाय तो उसके शरीरकी हरएक वस्तु प्रायः दूसरोंके कार्यमें आती है। किन्तु मनुष्यके शरीरका कोई अंश दूसरोंके काममें नहीं आता। चाहे कितने भी उत्तमोत्तम भोग सामग्री व खाद्य पदार्थ खिलाइये फिर यह एक दिन नष्ट हो जायगा और मिट्टी में मिल जायगा।

अतएव परमानंद शुद्ध चिदानन्द मूर्ति, सर्वसंग परि-

त्यागी सद्गुरुओंकी सेवा करनी चाहिये । तथा माता पिता भाई व सपूर्ण प्राणियोंकी सेवा करनी चाहिये । चाहे वह किसी भी कौम व किसी भी देशका क्यों न हो. रोगग्रसित हो, दीन हो, दुखी हो, उसकी निःस्वार्थभाव से अवश्य सेवा करनी चाहिए । हर तरहसे उसको सुख व शांति पहुंचाना मानवजातिका कर्तव्य है । यह मनुष्य शरीर ही दूसरोंकी सेवाके लिए है, न कि अच्छे अच्छे स्वादिष्ट भोजन कर इसको पुष्ट कर पशुवत् अन्याय कार्य करनेके लिए ।

प्रश्न—तृतीयकृत्यचिन्हं किं, विधते मे गुरो वद ।
हे गुरुदेव ! तीसरे कर्तव्यकी पहिचान क्या है सो बतावें ।

तृतीयकर्तव्य धनोपार्जन.

पूर्ववित्तव्यय पापं, प्रोक्तं कौ केवल सदा ।
सद्धनोपार्जनं कार्यं, नीतियुक्तिप्रमाणतः ॥ १० ॥
यतः स्यात्सफलं जन्म, धर्मवंशादिरक्षणम् ।
जीवनं मृत्युतुल्यं स्यात्तद्विना भक्षणं तमः ॥ ११ ॥

संस्कृतार्थ--पूर्वोपार्जितस्य वित्तस्य केवलं व्ययं कौ लोके, पापं कल्मषं प्रोक्तं, अस्मात् कारणात्, नीतियुक्तिप्रमाणतः सदा सद् समीचीनं यथा स्यात्तथा धनोपार्जनं, कर्तव्यं यतः, जन्म जीवनं, फलेन, धर्मार्थकामरूपेण सहितं स्यात् धर्मस्य, वंशस्य आदिपदेन, गोत्रादेः रक्षणं च भवेत् । स्वोपार्जितधनेन विना

भक्षणं भोगात्तु, तम अन्धकार एव, जीवनमपि मृत्युसदृशं भवेत् ।

अर्थ—पूर्वजोंके उपार्जित धनको ही केवल बैठे बैठे भक्षण करना लोकमें पाप कहा गया है, इसलिए नीति-युक्ति प्रमाणसे मर्यादीन धनका उपार्जन करना चाहिये। जिससे कि यह मनुष्यजीवन धर्म, अर्थ, काम, रूप फल से सफल हो। धर्म कुल, जाति आदि की रक्षा हो। अपने उपार्जित धनके विना यह जीना मरने के बराबर है, और उसके सामने केवल अन्धकार है।

भावार्थ—संचित धनको निरुद्यमी होकर भोगना यह प्रमादका लक्षण है और प्रमाद ही सब पापोंकी खान है। इसलिए अपने उद्यमसे धनका उपार्जन करके धर्म, कर्ममें सदुपयोग करना प्रत्येक गृहस्थका कर्तव्य है। वही पुत्र सुपुत्र है, जो अपने पैतृक धन, मान, मर्यादाकी वृद्धि करता है तथा समस्त मानव जातिका जन्म इसीलिए है कि विश्व को स्वर्णमय बना दे और ऐसी ऐसी सम्पत्ति इस विश्वके अंदर उपार्जन करना चाहिये कि कोई भी मनुष्य तो क्या पशु भी भूखा न मरे। इस भूमण्डलके अंदर इतना द्रव्य उपार्जन हो सकता है कि अनन्तानन्त काल तक अनन्ता-नन्त मनुष्योंके खाते रहने पर भी उसकी कमी न होवे। इसलिए निश्चित है कि लोकमें धनकी कमी नहीं है। यदि कमी है तो मनकी कमी है। इसलिए ही सारा देश उद्यम विना दरिद्रतासे पीड़ित है। इसलिये मनको मिला

करके सारे विश्वको हमेशाके लिए धनसम्पन्न व सुखी बना देना चाहिए।

संपूर्ण मनुष्योंके मनको मिलाना ही मानवका कर्तव्य है इसके विना सब पशुवत् हैं। यह सामान्यसे संपूर्ण विश्वका कर्तव्य कहा। तथा लोकातीत साधु सत्पुरुषोंको ऐसा साधन कमाना चाहिये कि जो लोकसे बहिर्भूत आत्मजन्य धन अर्थात् निजधनको उपार्जन करना चाहिए। फिर दूसरे धनकी कभी आवश्यकता न पडे।

व्यावहारिक धनसे तो केवल इंद्रियकी व शरीरकी तृप्ति होती है अतः इसकी तरफ साधु व सत्पुरुषको ध्यान नहीं देना चाहिये। निज धन है वह आत्मिक धन है और अतीन्द्रिय सुखको देनेवाला है। वही साधुओंको कमाना चाहिये जिससे अनन्तानन्त काल तक आजाद रहे। यही साधु सत्पुरुषोंका महान् कर्तव्य है।

प्रश्न--चतुर्थकृत्यचिन्हं किं वर्तते मे गुरो वद।

हे गुरुदेव! चतुर्थ कर्तव्यका स्वरूप बताइये।

चतुर्थ कर्तव्य पात्रदान.

आदाय संघाय चतुर्विधाय दत्वान्नवस्त्रं च यथात्मशक्त्या।
दीनादिजीवाय गृहादिवस्तु पश्चाद्धि कार्यं शुचिभोजनादिः।
दानं विना केवल भोजनार्थं धनार्जनं यश्च करोत्यभागी।
ज्ञेयःसः कौ कीटक एव मूढोऽभार्थं गृहादौ भ्रमतीव वा श्वा।

संस्कृतार्थ--श्री लक्ष्मी, कल्याणरूपा तां ददातीत्येवं भूताय, चतुर्विधाय, मुनि आर्यिका, श्रावक, श्राविका अथवा ब्रह्म-चारिप्रस्थादि चतुर्विधरूपाय संघाय, निजशक्त्यनुसार यथायोग्यं अन्न-वस्त्रादिकं दत्वा दीनदुर्बलरोगाद्यभिभूतप्राणिभ्योऽपि, आवासादिकं उपयुक्तवस्तुसकुलं दत्वा, पुनः शुचिः, द्रव्यतः भावतश्च शुद्धं भोजनादिकं ग्राह्यम् । यश्च अभागी अनवसः दानेन विनैव केवलमु-दरपूरणार्थं धनार्जनं करोति स मूढः कीटक एव कीटतुल्य एव, अथवा स्वोदरपूरणार्थं भ्रमता शुना सदृश एव सः ।

अर्थ--सकल कल्याणके दाता चतुर्विध संघ, साधु साध्वी श्रावक श्राविका अथवा ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ सन्यासी, इनको जो यथाशक्ति अन्न वस्त्रादि देकर तथा दीन, दुर्बल, आदिको भी निर्भय निराकुल बनानेके लिये योग्य स्थान, वस्तु आदि देकरके पश्चात् स्वयं शुद्ध भोजन पानादि ग्रहण करना यह चतुर्थ कर्त्तव्य है। क्यों कि जो केवल अपना पेट भरनेके लिए ही दानादिकके विना धन कमानेमें फंसा रहता है, वह मूर्ख इस लोकमें कीडेके समान है। अथवा अन्नके लिए घर घरमें भटकनेवाले कुत्तेके समान उसका जीवन है।

भावार्थ--विश्वमें दो प्रकारके जीव हैं। एक तो मानव जाति दूसरा पशु जाति। पशु जातिमें यह बुद्धि नहीं है कि वह विश्वका कल्याण करे व दान, पूजा, स्तुति,

अतिथिसत्कार आदिको करे। ऐसा विचार भी नहीं कर सकते क्यों कि उनमें हेय और उपादेयकी बुद्धि न होने से उक्त कार्य करनेमें असमर्थ हैं। उनसे मानव जाति तो अवश्य लाभ ले सक्ती है। लेकिन विश्वकल्याण करनेके पशुओंमें भाव नहीं है। इसलिए यह निश्चित ही है कि मानव जाति दूसरी है और पशु जाति कर्तव्य स्वभावसे दूसरी है।

अतएव समस्त मानव जातिको नीचे लिखे हुए कर्तव्योंको अवश्य करना चाहिये। समस्त विश्वको कल्याण-मार्गमें लगानेवाले परमहंस परमात्मा चिदानन्द मूर्ति सद्-गुरुओंको अर्थात् आत्मकल्याण एवं विश्व कल्याणके सिवाय जिसे और कोई फिकर न हो ऐसे फकीरों (साधुओं) को त्रिकरण शुद्धि-पूर्वक आहार, औषध, वसतिका आदि का दान अवश्य देना चाहिये, तभी मानव जातिका कल्याण होगा। परन्तु ऐसे सत्पुरुष बडी मुश्किलसे कभी २ मिलते हैं, हर समय नहीं। अतः इनके अभावमें वानप्रस्थको तथा समस्त गृहस्थी तथा विद्यार्थीगण जो विद्यालयमें संस्कृतादि अध्ययन कर रहे हैं उनको तथा संस्कृत विद्या पठन पाठनमें लगे हुए ब्राह्मणोंको अवश्य दान देकर अर्थात् भोजन कराकर स्वयं भोजन करना चाहिए। यह मानव मात्रका कर्तव्य है।

यदि इनमेंसे भी कोई पात्र न मिले तो भोजनके समय दीन दुखी भूखा कोई भी मिल जाय उसे देकर भोजन करना चाहिए। यदि यह भी न मिले तो भोजनके समय एक दो रोटी व ग्रास दो ग्रास दुखी जीवोंको देकर ही भोजन करना चाहिए। यह मानवमात्रका परम कर्तव्य है। इसके विना जीवन केवल पशुके समान है।

प्रश्न—पञ्चम कृत्यचिन्हं किं वर्तते मे गुरो वद।

गुरुदेव! पाचवे कर्तव्यका चिन्ह क्या है?

पञ्चम कर्त्तव्य प्रभुस्तोत्र.

निरजनप्रभोः स्तोत्र श्रीदं कृत्वैव सद्गुरोः।
तद्गुणारोपणं स्वस्मिन् कुर्वन्युक्तिप्रमाणतः ॥ २॥
तत्समो भवितुं शुद्धो यतते यो विचक्षणः।
निरञ्जनप्रभुः सोऽपि स्तोता स्यान्नात्र सशयः ॥१३॥

संस्कृतार्थ—निरञ्जनश्चासौ प्रभुःतस्य वीतरागदेवस्य, समीचीनश्चासौ गुरुर्ज्ञानध्यानपरायणस्य, श्रीदं श्रियं ददातीत्येवंभूतं स्तोत्रम् कृत्वा विधाय स्वस्मिन् स्वात्मनि, युक्तिप्रमाणतः तेषामिष्टदेव-गुरूणां गुणान् आरोपणं सम्पादनं कुर्वन् समाचरन् यः कश्चिद् शुद्धः निर्मलाचारसम्पन्नः विचक्षणः बुद्धिमान् तत्समो आराध्यसदृशो भवितुं यतते चेष्टते सः तत्समो निरञ्जनः सर्वक्लेशकर्मविपाकाशयै दूरीभूतः देव. भवेत्। स एव लोके स्तोता स्यान्नात्र संशयः।

अर्थ—निर्विकार देव और ज्ञान ध्यान परायण सच्चे

गुरुका कल्याणकारक स्तोत्र पाठ करता हुआ जो सदाचारी बुद्धिमान् उस आराध्य इष्टके सदृश बननेकी चेष्टा करता है, वह वास्तवमें निरञ्जन प्रभु हो सक्ता है, वही सच्चा स्तुति करनेवाला है। अर्थात् इष्ट देवगुरुकी स्तुति करके अपनी आत्मा वीतराग सद्गुण विभूषित करना मानव जीवनका परम कर्तव्य है।

भावार्थ—समस्त मानव जातिमें यह प्रचलित रिवाज और अनुभवसे विदित है कि जिस मनुष्यको जिस वस्तु की आवश्यकता पडती है वह उसको प्राप्त करनेमें सदा तत्पर रहता है। जैसे रोगी वैद्यराजको और निरोगपनेकी अपेक्षा करता है, ज्योतिषवाला ज्योतिष पंडितको, व्याकरणार्थी वैयाकरणको, न्यायका इच्छुक नैयायिकको, स्वर्ण मोती इत्यादि चाहनेवाला जौहरीको वस्त्रार्थी कापडियाको, प्राप्त करके अपना कार्य सिद्ध कर लेते हैं। इसी तरहसे अपनी आत्माको संसार समुद्रसे पार करनेके लिए परमानन्दमूर्ति सत्पुरुष साधुओंका व चिदानन्दमूर्ति निरञ्जन परमात्माका स्तुति, स्तोत्र, स्तवन, मिनिट दो मिनिट बन सके उतना अवश्य करना चाहिए और उन वीतराग परमात्मा देव तथा चिदानन्दमूर्ति गुरुओंके साथ चर्चा करके उनके समान अपनी आत्माको निर्मल पवित्र व कृतकृत्य बनाना मानवमात्रका परम कर्तव्य है। और यह अपूर्व अवसर खोनेपर चौरासीलाख

योनियोंमें भटकना पड़ेगा। सो इस उत्तम नरपर्यायको व्यर्थ खोना मनुष्यका कर्तव्य नहीं है।

प्रश्न—षष्ठं सुकृत्यचिन्हं किं विद्यते मे गुरो वद।

हे गुरुदेव! छटे सत्कर्तव्यका लक्षण क्या है?

उत्तर—कर्तव्यं प्राणिमात्रैः कौ प्राणिनां रक्षणं मुदा॥

संस्कृतार्थ—कौ भूलोकेऽत्र मुदा सहर्षं न तु विवशतया प्राणिमात्रैः सर्वैरपि, प्राणिनां षट्कायिकजीवाना रक्षणं कर्तव्यम्।

भावार्थ—इस पृथ्वीपर सब प्राणिमात्रका कर्तव्य है कि सब प्राणियोंकी रक्षा करें।

कुत्रागतोऽहं गमनीयमस्ति, कुत, सदा किं करणीयमेवं।
पृच्छन्त एवापि सुखादिदुःखं मिथोऽन्नवस्त्रादिगृहं ददानाः।
कुर्वन्त एव विनयादिसेवां मिथ. सदा स्वात्मसुखादिचर्चाम्
सम्यक्प्रवृत्या गमयन्तु कालं यतो भवेद्व. सफल नृजन्म १५

संस्कृतार्थ—अहं कस्याः गतेः समागतोऽस्मि, कस्याम् गतौ वा गन्तव्यमस्ति, मया किं करणीयम् एवं प्रकारेण स्वतः परतश्च सदा पृच्छन्तः, मिथः परस्परं सुखदुःखादिसंबंधिकुशलं विचारयन्तः, अन्नं वस्त्रं, गृहादिकं च ददाना मिथः, विनयसेवाशुश्रूषादिभिः सेवां कुर्वन्तः, सदा समतमेव स्वात्मनः सुखं हित तदादिर्यस्य तस्य चर्चाम् कुर्वन्तः समीचीनया प्रवृत्या आचारेण कालं समयं गमयन्तु अतिवाहयंतु यस्माद्धि वः युष्माकं जन्म जीवनं सफलं भवेत्।

अर्थ—मैं किस गति से आया हूँ और मुझे कहां जाना है तथा क्या करना चाहिये, इत्यादि विचारके साथ परस्परमें सुखदुःखादिके पूछते हुए, यथायोग्य अन्न

वस्त्रादि सामग्री देते हुए विनय, सेवा, शुश्रूषा, आदि सद् व्यवहारोंसे सबको सन्तुष्ट करते हुए, परस्परमें आत्महित की चर्चा, वार्ता करते हुए, भली प्रवृत्ति सहित अपने समय का सदुपयोग करो, जिससे कि तुम्हारा यह मनुष्यजन्म सफल हो।

भावार्थ—प्रत्येक मानव जातिको २४ घंटेमें जितना अपना समय मिले इतने समयमें आत्मासे एकान्तमें पूछना चाहिये कि हे आत्मन्! तू कहांसे आया और अब यहां से तुझे कहां जाना होगा, तुझे और इस नरपर्यायको प्राप्त कर क्या करना चाहिए। इस प्रकार अपनी आत्मासे आप ही पूछना चाहिये। फिर अपने आप ही अपनी आत्माको इस प्रकार उत्तर देना कि तूने इस विषय कषायके आधीन होनेसे व पञ्चेंद्रिय सुखमें मग्न होनेसे चौरासी लाख योनिमें भटकता भटकता बडे भाग्यसे व कठिनता से इस अमूल्य नरपर्यायको प्राप्त किया है। यदि फिर भी तू गफलतमें पड कर हिंसादिक क्रूरकार्य करेगा तो हे आत्मन्! तुझे घोर नरकमें जाना पडेगा व मायाचार छल कपटसे व्यवहार करेगा तो निंद्य पशु-योनिमें उत्पन्न होना पडेगा। एवं-दान धर्म एवं सांसारिक कार्योंको न्याय-पूर्वक करनेसे हे आत्मन्! तुझे मनुष्यपर्याय मिलेगा और २४ ही घंटे धर्म, तप, दान, विश्वसेवा व सद्गुरूसे तत्त्व चर्चा करेगा तो हे आत्मन्! तुझे स्वर्गगति प्राप्त होगी तथा सर्वसंगपरित्यागी होकर हे आत्मन्! चिदानन्द शुद्ध

चिद्रूप परमात्माके अंदर मग्न रहेगा, तथा स्वात्मिक रस पीवेगा व स्वात्मोत्पन्न रस एवं स्वात्मोत्पन्न शुद्ध भोजन करेगा तो मोक्षको प्राप्त होगा। इस प्रकार अपनी आत्मा को उत्तर देना और पूछना प्रत्येक मानवमात्रका कर्तव्य है। क्यों कि जो पैदा होता है वह अवश्य मरणको प्राप्त होता है। अत आगे जानेके लिए इस प्रकार पूर्वोक्त रीतिसे विचार करनेकी परम आवश्यकता है।

सप्तमकृत्यचिन्हं किं विद्यते मे गुरो वद।

अर्थ—गुरुदेव! सप्तम कर्तव्यका चिन्ह क्या है?

देशे विदेशे रिपुबन्धुवर्गे, समानभावः सुखदो हि कार्यः।
सर्वत्र शांति स्रचला यतःस्यात्,प्रीतिःप्रमोदोऽपि मिथस्त्रिलोके

संस्कृतार्थ—देशे, स्वनिवासप्रदेशे, विदेशे, दूरवर्तिदेशे च रिपूणां वर्गे, बन्धूनां च वर्गे, हि निश्चयेन, अवश्यमेवेत्यर्थः, सुखं हितं ददातीति, एतादृशः समानभावः रागद्वेषादिपक्षपातरहितः, समताभाव. कार्यः विधातव्यः, यस्मात् सर्वस्मिन् देशे अचला, शाश्वती न तु क्षणस्थायिनी, शान्तिः स्यात्,मिथः परस्परं त्रिलोके धर्मार्थकामसम्बन्धेषु लोकेषु त्रिष्वपि प्रीतिराल्हादः प्रमोदः हर्षःस्यात्।

अर्थ—स्वदेशमें और परदेशमें, वैरीवर्गमें और बंधु-वर्गमें, सदा सुखदायी, समताभाव रखना चाहिए। जिससे कि सर्वत्र सच्ची और स्थायी शान्ति हो, तथा त्रिलोकमें प्रीति और प्रमोदकी वृद्धि हो।

भावार्थ—प्रत्येक मानवका यह परमकर्तव्य है कि देश विदेशका भेद न रक्खें। और मत,धर्म, समाज आदि

में भेदभाव न करें। क्यों कि भेदभाव करनेसे ही वर्तमान में चारों ओर सर्वत्र हाहाकार हो रहा है, इसलिए यह हाहाकार व अशांति न हो व समस्त मानवजाति सुखी रहे इसके लिए जिस देशमें जो २ आवश्यकता को पूर्ण करना प्रत्येक मानव मात्रका कर्तव्य है। इसीसे आचन्द्र-दिवाकर पर्यंत विश्वमें शांति रहेगी।

एतानि कृत्यानि मुदा विधाय सर्वेऽपि जीवा सुखिनःसदा स्यु'
श्रीकुंथुसिंधोः सुखशांतिमूर्तेः, भावोऽस्ति सूरेः,करुणाकरस्य

संस्कृतार्थ—एतानि पूर्वोक्तानि, उपर्युल्लिखितानि सप्तकर्तव्यानि मुदा सहर्षं कृत्वा, सर्वेऽपि जीवाः सदा सुखिनः निराकुलाः स्यु. एवं करुणाकरस्य, सुखशान्तिमूर्ते' सूरेः श्रीकुंथुसागरस्य भावः अभिप्रायोऽस्ति।

अर्थ—इसप्रकार उक्त सात कर्तव्योंका आचरण करके सर्वप्राणी सुखी हों, बस! यही करुणाके समुद्र, सुखशान्तमूर्ति श्रीकुन्थुसागराचार्यका अभिप्राय है।

भावार्थ—पूर्वोक्त कर्तव्य वर्णन करनेका सद्गुरुका यही अभिप्राय है कि आज तक जो अनाचार करते आये वे दुर्व्यवहार असद् आचार, आदिको छोडकर पूर्वोक्त बताये हुए कर्तव्यमें मनुष्य लीन होवें जिससे प्राणिमात्र को सुख शांतिका लाभ हो। यही इस ग्रंथके बनानेका ग्रंथकारका आशय है।

प्रथमाध्यायः समाप्तः।

अथ द्वितीयोऽध्यायः

मनुष्याणां मुख्यः राजा गण्यते तस्मात्तत्कर्तव्यं विशेषतो निर्दिश्यते।

मनुष्यवर्गमें राजा मुख्य गिना जाता है। इसलिये राजाके विशेषकर्तव्य भी होते हैं जो संक्षेपसे यहां बताये जाते हैं।

साधूनां धर्मनिष्ठानां कार्यं राज्ञा सुरक्षणम् ॥
दुष्टानां निग्रह कार्यं सर्वदा पक्षपातिनाम् ॥ १८ ॥

संस्कृतार्थ—दुःखयुक्तजीवानुत्तमे सुखे धरति स धर्मः— अथवा वस्तुस्वभावः धर्मः, तस्मिन् निः-शेषेण तिष्ठन्ति इति धर्म-निष्ठास्तेषा, साधूना रक्षणं। दुष्टानां—उत्पातिनां, पक्षः रागद्वेष भावः तस्मिन्, पतितानां दुष्टानां निग्रहं दमनं कर्तव्यम्।

अर्थ—धर्मनिष्ठ संतजनोंकी रक्षा करना, और दुष्ट अर्थात् रागद्वेषसे युक्त पक्षपातियोंका निग्रह करना राजाका कर्तव्य है।

भावार्थ—सद्गुरु व सज्जनधर्मात्माओंकी हर तरहसे रक्षा करना ही राजाका परमधर्म कर्त्तव्य है। क्यों कि धर्म तो सद्गुरु व सज्जनधर्मात्माके रहनेसे ही रहता है। अतः सद्गुरु व सज्जन धर्मात्माओंकी रक्षा करना ही धर्मकी रक्षा करना है। एवं दुष्ट पुरुषोंका निग्रह कर येन केन प्रकारेण उन्हें धर्ममें लगाना ही राजाओंका प्रधान कर्तव्य है। क्यों कि दुष्टलोग बंदरके समान सदा धर्म कर्मसे शून्य होते हैं। जैसे बंदर उद्याम बगीचेमें प्रवेश

करके बगीचेको विध्वस कर देते हैं। और स्वयं उन उत्त-मोत्तम बगीचेके फलोंको खानेसे वंचित रह जाते हैं इसी प्रकार दुष्टलोग भी सद्गुरु व सत्पुरुष इत्यादिको दुःख दे करके उन्हें स्वर्मोक्षादिसुखदेनेवाले धर्मसे वंचित कराते हैं। और स्वयं भी धर्म से वंचित रहते हैं। इसलिये राजा महाराजाओंको दुष्टोंका निग्रह करना महान कर्त्तव्य माना गया है।

एतस्य किं फलमित्याचष्टे—इसका फल बताते हैं।

साधूनां रक्षणात्पुण्यं, भवत्येव शिवप्रदं ॥
दुष्टानां निग्रहाच्चापि, पुण्यं प्रोक्तं प्रमाणतः ॥१९॥

संस्कृतार्थ—उक्तलक्षणलक्षितानां साधूनां रक्षणात् शिव-प्रदं पुण्यं यथा तथा दुष्टानां-दुर्जनानां, निग्रहणात् ताडनात् अपि प्रमाणतः युक्तितः पुण्यं प्रोक्तं।

अर्थ—संतजनोंका संरक्षण, और दुर्जनोंके निग्रहसे अवश्य ही कल्याणप्रदपुण्य संचय होता है।

भावार्थ—सद्गुरु व सज्जनपुरुषोंका रक्षण करना यह तो राजाका कर्तव्य है ही। किन्तु दुर्जनोंका निग्रह करना भी महान् पुण्य ही नहीं किन्तु मनुष्यत्वको व धर्मको कायम रखना है। दुष्टोंके निग्रहसे पर्यायांतरसे शिष्टोंका पालन होता है, क्यों कि दुष्टजन शिष्टोंके मार्गमें कंटकस्वरूप होते हैं।

—:※:—

केन भावेन प्रजा पालनीया ? प्रजाओंका पालन किस प्रकार होना चाहिए।

भावस्तत्रेति राज्ञोऽस्तु इमे मे पुत्रपौत्रकाः।
धार्मिकाः सज्जनाः स्वस्थाः भवन्त्वेते निरामयाः ॥२०॥

संस्कृतार्थ—तत्र प्रजापालनरूपे कर्तव्ये सदसतामनुगृहनिग्रहे च राज्ञः पृथ्वीपालकस्यायमेवाभिप्रायोऽस्तु यदि मे प्रजाजनाः पुत्रपौत्रका एव, अतस्तच्छ्रेयोवर्धनार्थं धार्मिकाः सज्जनाः स्वस्थाः सुखिनः स्वकर्तव्यनिष्ठाश्च निरामयाः रोगरहिता भवन्तु।

अर्थ—सज्जनोंपर अनुग्रह और दुर्जनोंके निग्रहरूप कर्तव्यमें राजाका यही अभिप्राय है कि, संपूर्ण प्रजा मेरे पुत्रपौत्रोंके समान हैं। इसलिए इन सबके कल्याण हो। एव धार्मिक सज्जन स्वस्थ निरोगी व निराबाध होवें।

भावार्थ-सद्गुरु सज्जन व धर्मात्माओंकी रक्षा करना तथा दुर्जनोंका निग्रह करना यह आत्मअहंकार, ख्याति पूजा व विषयकषाय आदि को पुष्ट करनेके लिए नहीं है, किंतु उसमें राजाका यह अभिप्राय रहता है कि मेरी संपूर्ण प्रजा व मेरे पुत्रपौत्रादिक सब धर्मात्मा बने रहे। तथा परस्परमें एक दूसरेके साथ शांतिपूर्वक चिरकालतक व्यवहार करते हुए रहें व भविष्यमें किसी प्रकार का कोई उपद्रव न करें। यही उद्देश राजाओंका होता है। इसलिए "राजा हि परदेवता" माना गया है, क्यों कि विश्वके कल्याणके लिए ही उनका जन्म है।

अतोऽपराधिनो दण्डो, दीयते तत्प्रशान्तये ॥
न ख्यातिलाभपूजार्थं न चाय पक्षपाततः ॥ २१ ॥

संस्कृतार्थ—अपराधिनो दण्डः किमर्थं दीयते इति चेत् केवल तत्प्रशान्तये, तत्सुधारणार्थं दोषापनोदार्थं वा, न च पक्षपाततः श्र नैव ख्यातिलाभपूजेधिाहकापेक्षाया ।

अर्थ—अपराधीको दण्ड क्यों दिया जाता है? केवल उसके सुधारके लिए ही। पक्षपातसे, एव ख्याति, लाभ पूजा के लिए नहीं दिया जाता है।

भावार्थ—राजा अपराधियोंको दंड उनके दोषोंको दूर करनेके हेतुसे ही देता है। उनको दंड देनेमें और कोई पक्षपात नहीं है, और न उसके स्वतःकी ख्यातिलाभ पूजादिकी अभिलाषा है। केवल परोपकारकी भावना है।

सद्विद्याऽध्ययनार्थं हि, यथा पुत्रोऽपि ताड्यते ॥
न तत्र ताडकस्यास्ति, भेदबुद्धिभयप्रदा ॥ २२ ॥

तथा राज्ञो न दुर्भावो, दण्डदाने दयानिधेः ॥
वर्तते केवलं दृष्टिः सर्वेषां हितकारिणी ॥ २३ ॥

संस्कृतार्थ—यथा येन प्रकारेण सद्विद्याध्ययनार्थं हि खलु पुत्रोऽपि आत्मजोऽपि ताड्यते, किन्तु ताडकस्य भयप्रदा भीति-दायिनी, भेदबुद्धि-अय परः इति मतिर्नास्ति, तेनैव प्रकारेण, दयायाः निधेः दया सागरस्य राज्ञः नृपस्य, दण्डदाने दुष्टनिग्रहे, दुर्भावो कलुषितपरिणामो नास्ति, किंतु सर्वेषाम् अखिलजीवानां हितकारिणी, सुखावहा दृष्टिर्वर्तते विद्यते ।

अर्थ--जिस प्रकार समीचीन विद्या पढानेके लिये पुत्रको ताडना भी दी जाती है, किन्तु ताडकको उसमें भेद बुद्धि नहीं रहती है जिससे कि पुत्रको भय या हानिकी संभावना हो। उसी प्रकार दयाके सागर राजाके भी दुष्टोंके निग्रह करनेमें कोई दुर्भाव नहीं है। किन्तु सब जीवोंका हित हो केवल यही दृष्टि रहती है।

भावार्थ—जैसे पुत्र समीचीन विद्या पढनेके लिये नहीं जाता है तो पिता उसे हित-मित-प्रिय-भाषण बोल कर कुछ खानेकी चीज देकर, स्कूलमें भिजवाता है। यदि पुत्र इससे भी स्कूलमें न जाय तो उसे बलात्कार से व ताडनादि प्रयोगसे स्कूलमें पिता भिजवाता है। किन्तु उस पुत्रके ताडन व बलात्कार करनेमें पुत्र उन्नतिको प्राप्त हो, विश्वकी शान्ति करनेमें समर्थ हो, विद्वान् बने, आत्मोन्नति व लोकोन्नति करे, आदि पिताका उद्देश्य रहता है। उस पुत्रको ताडन करनेमें पिताका ख्याति लाभ आदि दुष्ट भाव नहीं है। इसी तरह जगत्पिता राजा प्रजाको दण्ड देता है, तो वह प्रजाकी उन्नति व प्रजाकी हितकी दृष्टिसे देता है। उसमें वह अपना कर्तव्य समझ कर देता है. क्यों कि राजा स्वयं यह समझता है कि 'तपोऽन्तेराज्यं' (मुझे पूर्वपुण्यसे राज्य मिला) तथा अगर यहां पर पुण्य नहीं करूंगा तो 'राज्यान्ते नरकं' होगा। अतः प्रजाको पुत्रवत् पालन कर उसे धर्ममार्गमें

लगाना ही पुण्य है। यह कार्य मुझे अवश्य करना चाहिये। यदि न करूं तो 'राज्यान्ते नरकं' अर्थात् नरककी प्राप्ति होगी। मुझे ही नहीं किन्तु साथमें मेरी प्रजा भी नरकमें जावेगी। क्यों कि "यथा राजा तथा प्रजा"। जो अपने प्राणोंके समान सम्पूर्ण विश्वके प्राणियोंकी रक्षा करता है वह राजा राजा नहीं, किन्तु देवता है। राजा व सद्गुरु का जन्म विश्वकल्याणके लिये ही है। अतः राजा व सद्गुरु जो २ आज्ञा करते हैं वह प्रजाको शिरोधार्य करना चाहिये। लोकमें राजद्रोही व गुरुद्रोही नहीं बनना चाहिये। यही मानवमात्रका कर्तव्य है प्राण जानेपर भी मनुष्यको कर्तव्यपालनसे च्युत नहीं होना चाहिये।

जैसे बालक अच्छी तरहसे खेलता हो तो माता अपने काममें लगी रहती है। जब बच्चेको भूख लगती है तो माताको बुलानेके उद्देशसे रोना प्रारंभ कर देता है, तो माता शीघ्र ही अपने कार्यको छोड करके बच्चे की इच्छाको पूर्ण कर देती है। इसी तरहसे यदि प्रजाको कोई आवश्यकता पडे और जगत्पिता राजा यदि और धर्म कार्यमें लगा हुआ हो तो प्रजाका कर्तव्य है कि वह अपने दुःखको राजाके सन्मुख अर्ज करे, यही नहीं किन्तु राजा की थालीमें भोजन तक करनेका प्रजाका (पुत्रका) अधिकार है। सो ठीक ही है। पुत्र यदि पिताकी थालीमें भोजन न करे तो कहां करे। तो राजा [पिता] अवश्य प्रजाको संतुष्ट कर

उसके दुःख दूर करेगा ही प्रजाका और दुःख दूर करना ही राजाका प्रधान कर्तव्य है ।

मेरु यदि कम्पित हो जाय तो भी राजा अपने कर्तव्य से चलायमान नहीं होगा ।

पूर्वमें जैसे राजा जनक, दशरथ, रामचंद्र, युधिष्ठर, भरतचक्रवर्ती, श्रेयांस, कर्ण आदि अनेकराजा न्याय व धर्मसे प्रजापालन कर अपनी कीर्तिको अजर अमर कर विदेही [मुक्त] बन गये, उसी प्रकार वर्तमानमें भी सम्पूर्ण राजावर्ग उनका अनुकरण कर विदेही [अभ्युदय लाभ] बनें । यही ग्रंथकर्ता सद्गुरुका आशिर्वाद है ।

दुष्टानां निग्रहात्पुण्यं सतां संरक्षणादिव ॥
लोकस्य शांतये प्रोक्तं, कुंथुसागरसूरिणा ॥ २४ ॥

संस्कृतार्थ— दुष्टानां दूषितजनानां निग्रहात् दण्डविधानात् सतां संरक्षणेन यथा स्यात्तथा पुण्यमेव भवतीति श्री कुंथुसागराचार्येण लोकस्य शान्तये लोके शांतिस्थापनार्थं प्रोक्तं, नैव स्वार्थतः ।

अर्थ—वास्तवमें दुष्टपुरुषोंका निग्रह करनेसे सज्जनोंके संरक्षणके समान ही पुण्यबंध होता है, इस प्रकार सत्पुरुष-विश्वोद्धारक आचार्य श्रीकुंथुसागरजी महाराजने लोकशांतिके लिए कहा है ।

भावार्थ—यों तो राजाओंको देवताके समान माना है सो ठीक ही है। क्यों कि देवता और राजा दोनोंका प्रधान कर्तव्य विश्वके प्राणियोंकी रक्षा करना व उन्हें सुखी बनाना है। परन्तु राजा को स्वय यह समझना चाहिए कि हम विश्वके सेवक हैं, क्यों कि सद्गुरु व विश्वके प्राणियों की सेवा करना बडे ही भाग्यसे मिलता है। अतः राजा-वर्गको अवश्य ही यह कार्य कर दिखाना चाहिये। क्यों कि प्रजा राजा का ही अनुकरण करती है राजा धर्मात्मा हो तो प्रजा भी धर्मात्मा होती है नीतिकारोंने भी कहा है—

राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठा पापा पापे समे समा॥
राजानमनुवर्तंते, यथा राजा तथा प्रजा॥

इति द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः॥
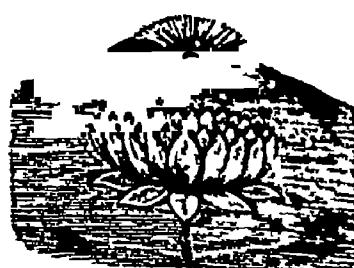
अथ तृतीयोऽध्यायः

मानवजातिके सात कृत्य तथा राजाओंके लिए कुछ विशेषकर्तव्य तो बताये। फिर आत्मसिद्धिके लिए और विश्वशांतिके लिए कुछ और भी बताया जाता है, सो भाईयों! इसको ध्यानसे मनन करके नर--जन्मको सफल बनाओ।

यहां पर पुनरुक्त दोष नहीं है, क्यों कि मानव जातिमें सब एक श्रेणीके नहीं होते हैं। कोई एक बार कहनेसे कोई दो बार, कोई दस बार, कहनेसे आत्मकल्याण करता है। इसलिये संपूर्ण श्रेणीके जीवोंका हित हो, इस उद्देश्यसे यह ग्रन्थ बनाया है। अब और भी आवश्यक कर्तव्य बताते हैं।

आनन्ददायकं यत्र प्रेम न स्याच्छुभं मिथः।
तद्बन्धुर्नियमच्छ्रीदो वा न तत्र वसेज्जनः॥ २५॥
पशूयंते बुधाः लोके स्नेहहीना जनास्सदा।
स्नेहानुबंधबद्धाः स्युः हेयादेयविवेचकाः॥ २६॥

संस्कृतार्थ—यत्र यस्मिन् जनपदे जने वा सदा निरन्तरं, शुभं पवित्रं; निस्वार्थमिति वा, मिथ परस्परं मानंददायकं तुष्टिजनकं प्रेम स्नेहं न स्यात् तथा तस्य प्रेम्णः बन्धुर्नियमः कीदृशः श्रीदः श्रियं ददातीत्येवंभूतः प्रेमसहितो नियमः नास्ति तत्र तस्मिन् जनपदे जने वा न वसेत् निवासो न कार्यः।

यस्माद्धि लोके स्नेहेन नियमेन च हीनाः रहिताः नराः बुधाः सन्तोऽपि पशूयंते पशु इवाचरति । इति ज्ञात्वा हेयोपादेयविज्ञान संयुक्ता बुधाः स्नेहनियमेन अनुबद्धा भवेयुः ।

अर्थ—जिस देशमें अथवा व्यक्तिमें पवित्र और परस्पर सन्तोषजनक प्रेमभाव नहीं हैं वहां मनुष्यको नहीं रहना चाहिये । क्यों कि प्रेम और नियमसे हीन मनुष्य चाहे वह कितना ही पढा लिखा क्यों न हो वह पशु-तुल्य है । ऐसा जान कर विवेकियोंको प्रेम और नियमसे अपनेको विभूषित करना चाहिये ।

भावार्थ—प्रेम बहुत उत्तम वस्तु है । किन्तु उसमे संयम, नियम मर्यादा अवश्य होना चाहिये । विचारहीन, मर्यादाहीन प्रेम तो हानिकारक है । किसी वस्तु, मित्र, सुन्दर स्त्री, धन आदि पर किसी भी स्वार्थसे प्रेरित प्रेम तो अधम और नाशक है । निःस्वार्थ और कृपालु अन्तःकरण से पैदा हुआ प्रेम ही सच्चा प्रेम है । वह जिस व्यक्ति या समाजमें होता है उसीका कल्याण होगा । एव सम्पूर्ण विश्वके प्राणियोंको अपनी आत्माके समान समझना प्रेम है । अपनी विवाहित स्त्रीको छोडकर दुनिया भरमें जितनी स्त्रियां हैं उनको माँ बहिन व बेटीके समान समझना चाहिये । और इसीके अनुसार तमाखू, बीडी, जुआ इत्यादि दुर्व्यसनोंका तथा व्यर्थ बकवाद करनेका त्याग करना चाहिये । इसीका नाम नियम है ।

उपर्युक्त बातका पालन करनेसे ही प्रत्येक मनुष्यका मनुष्यत्व कायम रहेगा। और इस भवमें तथा परभव में मानवजाति मात्रको सुख व शांतिकी प्राप्ति होगी।

अथोक्तसत्कृत्यानां महत्त्वप्रदर्शनार्थम् सद्गुरुणा विशेष-तयोल्लेख. क्रियते ॥

सर्वजीवैः समं मैत्री न कृता यदि कारिता ॥
श्रीआत्मन् ! किं कृतं तर्हि महत्कार्यम् त्वया भुवि ॥२७॥

संस्कृतार्थ—हे आत्मन् ! त्वया यदि सर्वजीवैः समं मित्रता न कृता नाऽपि कारिता, या हि इति निश्चयेन लोके सर्वतो भावेन श्रीदा अस्ति तर्हि त्वया लोके किमन्यत् महत्कार्यम् कृतं !

अर्थ—हे आत्मन् ! यदि तूने इस दुनियामें सब जीवोंमे न तो मित्रता की और न कराई जिससे कि मनुष्य शोभा संपन्न होता है तो बतलाओ तूने और किया ही क्या है ! सब जीवोंसे मैत्री भाव रखना, यह महत्कार्य है।

भावार्थ—हे आत्मन् ! तू अनादिकालसे लडता झगडता ही आया है, और इस उत्तमनरपर्यायको प्राप्त कर फिर लडता झगडता रहेगा, तो तेरी मूर्खताका कहीं ठिकाना है ! खैर, अब तो अत्यंत हो चुका, इसलिए विश्वके संपूर्णमानवोंसे तू मैत्री कर। यही मानवजातिका तेरा महान् कर्तव्य है। इसके बिना तेरा जीवन पशुतुल्य है। इस प्रकार प्रत्येक मनुष्यको अपनी अपनी आत्माको समझाना चाहिये। समझाना ही नहीं किंतु उसे कार्यरूप

परिणत करना चाहिये, तभी तेरा कल्याण होगा।

दुश्चिन्ता स्वात्मनो यत्नात्त्वया दूरीकृता न चेत्।
किं कृतं मंगलं लोके महत्कार्यम् सुखप्रदम् ॥ २८ ॥

संस्कृतार्थ—हे आत्मन्! प्रयत्नात् सावधानतया यदि त्वया दुश्चिन्ता स्वात्मनो दूरी न कृता तर्हि सुखप्रदं मंगलं शिवप्रदं महत्कार्यं किं कृतं ?

अर्थ—हे आत्मन्! यदि तूने दुश्चिन्ता खोटी चिंताको दूर नहीं किया तो सुख संपादक बडा कार्य और किया ही क्या है? यह मुझे बता, अर्थात् दुश्चिन्ताको छोडनेसे और कोई बडा सुखदायककार्य लोकमें नहीं है।

भावार्थ—हे आत्मन्! अनादिकालसे इतनी मूर्खताका कार्य करता आया जिसका कहीं ठिकाना नहीं है। अब होश में आ। दुनियामें जितने भी प्राणी हैं वे सब अपने भाई बंधु हैं इसलिए उन्हें मारनेका प्रयत्न नहीं करना चाहिये। अगर तू उन्हें मारनेका प्रयत्न करेगा तो यह समझना चाहिये कि खुद अपनेको तू मार रहा है। इसलिए यदि तुझे मारना ही इष्ट हो तो अनेकों प्रकार की दुश्चिन्ताओंको करनेवाले इस चञ्चल मनको ही तू मार दे। और अनर्थोंका खजाना ऐसी इन पञ्चेंद्रियोंको ऐसा मार दे कि वे फिर न उठें। तभी तेरी दुनियामें बहादुरी एवं शूरवीरता है, न कि उन कायर व निरपराधी प्राणियोंको मारने में तेरी शूरवीरता है। इसलिए मन और इन्द्रियोंको तू अवश्य ही मार दे। तभी तेरा कल्याण होगा।

इस प्रकार प्रत्येक मनुष्यको अपनी आत्माको समझाना चाहिये। तभी मनुष्यकर्तव्यका पूर्णरीतिसे पालन होगा।

संसारभ्रमणादीनां निरोधो न कृतो यदि ।
विवेकस्य फलं किं स्याद्वदात्मन्! दुर्लभस्य ते ॥२९॥

संस्कृतार्थ'—चतुर्गतिरूपसंसारपरिभ्रमणस्य आदिशब्दात् दुर्व्यसनादेः, यदि निरोधो न कृतः तर्हि ते विवेकस्य हिताहितप्राप्ति परिहारसमर्थस्य ज्ञानस्य, कीदृशस्य दुर्लभस्य किं फलं किं प्रयोजनं जातं इति मे वद ।

अर्थः—चतुर्गतिरूप संसार भ्रमण और दुर्व्यसन आदिका निरोध यदि हे आत्मन्! तूंने नहीं किया तो बता कि तेरे विवेकका फल ही क्या रहा? जो बार २ मिल नहीं सकता है।

भावार्थ—हे आत्मन! अनादिकालसे तू नरक तिर्यंच मनुष्य और देव गतिके अन्दर अनन्तवार जन्म और अनंतवार मरण किया और चारों गतियोंमें इतना अपार दुःख भोगा कि जिसकी मनसे कल्पना भी नहीं हो सकती, फिर क्या तू उन दुःखोंको भूल गया। इसलिए हर तरहसे प्रयत्न करके अपनी आत्माको संसारचक्रमें बचाना चाहिये तभी तेरा मनुष्यकर्तव्य पूरा होगा। और तेरा कल्याण होगा और कार्य तो तेने अनंत किये किंतु उससे कुछ सार नहीं निकला और यदि यह कार्य तेने नहीं किया तो फिर व्यर्थ की चतुराईमें तेरा क्या लाभ!

प्रचारो न कृतो भक्त्या दयाधर्मस्य शांतिदः ॥
सहस्रानेककार्याणां करणात्किं प्रयोजनम् ॥ ३० ॥

संस्कृतार्थ---यदि दयाधर्मस्य अहिंसाधर्मस्य शांतिदःप्रचार. भक्त्या श्रद्धया विनयेन च न कृतः तदाऽन्यसहस्रानेककार्याणां करणादपि किं प्रयोजनं स्यात् ।

अर्थ---यदि अहिंसा धर्मका शांतिप्रद प्रचार, भक्ति तथा श्रद्धापूर्वक नहीं किया तो अन्य हजारों अनेक कार्यों के भी करनेसे क्या प्रयोजन ?

भावार्थ--हे आत्मन्! जो काम करनेका था सो तो तूने नहीं किया और व्यर्थ ही दुनियाके आडम्बरोंमें समय लगा दिया। इससे तेरी मूर्खता प्रगट होती है। इसलिए अब तुझे विश्वभरमें जो अनेकसंस्कृति, मत मतान्तर हैं, और जिनसे सारा संसार थक चुका है, उन सब संस्कृति अर्थात् मतमतान्तरके जालको छोड देना चाहिए और एक अहिंसा संस्कृति अर्थात् अहिंसाधर्म का ही सर्वत्र प्रचार करना चाहिये। इससे अवश्य विश्वकल्याण होगा अतः हे आत्मन्! तू इन हजारों कार्योंको छोड कर इस इस अहिंसासंस्कृति का ही सर्वत्र प्रचार करनेका घोर प्रयत्न कर। इसके विना सब कार्य निरर्थक हैं। जैसे एकके विना केवल बिंदियोंका कोई प्रयोजन नहीं निकलता उसी प्रकार अहिंसाधर्मके प्रचार विना और धर्मोंका प्रचार करना स्वयं अपने आपका अपने हाथसे ही गला

काटनेके समान है, इसलिए यह निश्चित है कि अहिंसा धर्मका प्रचार होनेके लिए अत्यंत आवश्यक है। अहिंसा धर्मका लक्षण भी संक्षेपमें समझ ले। मनसे दूसरे प्राणियों का अहित व उनका नाश या दुःख देनेका चिंतन करना मानसिक हिंसा है। और दूसरे प्राणियोंका दुष्ट कठोर क्रूर वचनोंद्वारा किसी भी प्रकारसे तिरस्कार व अपमान करना वाचनिक हिंसा है। और कायसे निरापराधि और निर्बल प्राणियोंके अंग, नाक, कान, काटना अथवा प्राणोंका घात करना और सदाके लिए उनको दुनियासे हटा देना कायिक हिंसा है। इसीसे आत्मा का अहित होता है। इस लिए प्रत्येक मनुष्यको ऐसी तीनों प्रकारकी हिंसा करके अपनी आत्माको दुर्गतिमें पहुचाना नहीं चाहिये और मनसे समस्त मानवजातिका हितचिंतवन करना मानसिक अहिंसा है। हित प्रिय भाषणसे समस्त मानव जातिका क्लेश दूर करना उनकी आत्माको शांति पहुंचाना और परस्पर एक दूसरेमें मैत्री व प्रेम उत्पन्न करना वाचनिक अहिंसा है। निरपराधी निर्बल प्राणियोंकी कायसे सेवा आदि द्वारा रक्षा करना ही कायिक अहिंसा है। यही मानवजातिका महान् धर्म है अथवा आत्मामें रागद्वेषोत्पत्ति होना ही हिंसा है और नहीं होना अहिंसा है। इसके सिवाय जितने कार्य व क्रियायें हैं वे सब व्यर्थ आडंबर हैं और मानव जातिका पतन करानेवाले हैं।

हे आत्मन् ! तू और भी अहिंसा धर्मका खुलासा सुन जिससे तुझे पालनेमें सहूलियत रहे।

हिंसा चार प्रकारकी है -१ उद्योगी, २ आरंभी ३ विरोधी, ४ संकल्पी. इन चारोंमें संपूर्ण समावेश होता है।

१ उद्योगी हिंसा —असि, मसि, कृषि, वाणिज्य आदि उद्योग करनेमें जो प्राणियोंका वध होता है सो उद्योगी हिंसा है।

२ आरंभी हिंसा —रसोई बनाना, चक्की चलाना, चूला आदि गृहारम्भ करनेमें तथा स्नान, गमन, मोटर आदिके चलानेमें जो प्राणियोंका वध होता है वह आरंभी हिंसा है।

३ विरोधी हिंसा —दुष्टोंको अर्थात् कारण विना मनुष्योंको पीडा करनेवाले प्राणियोंको रोकनेमें तथा विश्व को सताने व नाश करनेवाले मनुष्योंको रोकनेमें अथवा चोर, सिंह आदि कारण विना लोगोंको दुःख देनेवालोंको रोकनेमें तथा पुत्र स्कूलमें नहीं जाते हैं तो उनको भेजने में, जो कुछ भी उसके लिए पिता द्वारा पीडा हो वह सब विरोधी हिंसा है।

इस प्रकार यह तीनों प्रकारकी हिंसा गृहस्थी [संसारी मनुष्य] त्याग नहीं कर सकता है, परन्तु यह भी अहिंसा के समान ही है। क्यों कि उक्त तीनों कार्य करनेमें विश्व-कल्याण व आत्मकल्याणकी ही भावना रहती है। इस लिए यह तीनों हिंसा होने पर भी अहिंसा ही है। क्यों कि

उद्योग धनोपार्जन करनेके लिए ही किया जाता है और धनसे विश्वका कल्याण होता है। तथा आरंभ रसोई पकाना, व्यायाम करना, परोपकारके लिए गमन करना इत्यादि जो कुछ भी आरम्भ है वह भी विश्वकल्याण व आत्मकल्याणके लिए हैं।

इसी प्रकार विरोधीहिंसा भी विश्वकल्याणके लिये ही की जाती है। जैसे चोरोंको पकडना, दुष्टोंको रोकना, अहंकारियोंका मानमर्दन करना, दुनियाको पीडा पहुचाने वाले व्याघ्र, सिंह आदिको रोकना यह सिर्फ विश्वकल्याणके लिए ही किया जाता है। इसलिए यह भी अहिंसा है। इसी प्रकार उक्त तीनों प्रकारकी हिंसा होने पर भी अहिंसा है।

४ संकल्पी हिंसा है--अपराधके बिना प्राणियोंको मारना तथा धर्मके नामसे दुनियामें कलह, लडाई, झगडा मचाना, मंदिर, धर्मशाला आदिका द्रव्य या जायदाद हडप करना, तथा देवताओंके नाम से बकरा, बकरी, भैंसा, मुर्गा इत्यादि जीवोंका बलिदान देना, तथा अपनी स्वार्थ सिद्धिके लिए धर्मात्माओं पर व राज्य पर हमला कर लाखो जीवोंको मार डालना, तथा शिकार आदि खेलकर निरपराधी प्राणियोंको मार कर भक्षण करना यह सब संकल्पी हिंसा है। इससे महान् पाप का बंध होता है। और इससे आत्माको नरकादि दुर्गतिमें जाना पडता है। और वहां जाकर अनन्तानन्त काल तक अनन्त दुःख भोगना पडता

है। इसलिए किसी भी प्राणिमात्रको संकल्पी हिंसा नहीं करना चाहिये। यदि कदाचित् धर्मके नाम पर हिंसा करने की रूढी चली आई है तो धीरे २ ऐसी रूढीको बंद करनेका प्रयत्न करना चाहिये, यह संकल्पी हिंसा इसलिये पापबंधका कारण है कि इसमें धर्मका तिल मात्र भी अंश नहीं है।

उद्योगी व आरंभी तथा विरोधी हिंसामें जो कुछ प्रमादजन्य पाप हुआ है, उसे दिनमें आधा घंटा एक घंटा अवश्य ही 'किये हुए पापका प्रायश्चित करना, क्षमा-याचना करना, आत्मनिन्दा करना, परस्पर एक दूसरेसे क्षमा मांगना,' आदिके द्वारा दूर करना चाहिये, एवं इस प्रकार चिन्तवन करना चाहिये कि क्या करूं? ऐसे संसारिक कार्य मुझे करने ही पडते हैं। तथा वर्षमें, मासमें, एक दिन समस्तसांसारिक कार्योंको सर्वथा छोड कर कचहरी, व्यापार, दुकान आदिको बंद कर, योग्य स्थानमें बैठ कर दिन भर धर्मध्यान,गुरुभक्ति इत्यादिसे समय व्यतीत करना चाहिये, जिससे कि आरंभी, उद्योगी, व विरोधी हिंसामें जो पाप लगा है उसका निराकरण हो जाय। और वर्ष भरमें एक दिन विश्वप्राणियोंकी शांतिके लिये अहिंसा दिन मनाना चाहिये।

दिवाली, दशहरा, आदि त्योहार केवल इसी तरहसे धर्म साधनके लिये ही हैं। अतः ऐसे पर्वोंमें केवल धर्म ही का साधन करना चाहिये, इसके विरुद्ध त्योहारोंमें धर्मके विरुद्ध हिंसा करना, मांस, मदिरा, आदिका भक्षण करना या अनेक

प्रकारके जीवोंका वध करना, यह तो अपनी आत्माको स्वयं अधोगतिमें पहुंचाना है। जैसे कोयलेसे बिगडे हुए हाथको कोयलेसे ही धोना और मलमूत्रके हाथको मलमूत्र से साफ करना चाहे तो केवल अनुचित व अज्ञान है, इसी प्रकार हिंसासे तो पाप लगता ही है फिर उस हिंसाको धोनेके लिए हिंसा करना कहां तक ठीक है ?

गृहस्थ यदि उन आरंभी, उद्योगी, व विरोधी हिंसाको नहीं छोड सकें तो संकल्पी हिंसाको तो अवश्य ही छोड कर उन्हें मानवजातिका परिचय कराना चाहिये। इसीसे आत्माका कल्याण होगा। तथा संकल्पी हिंसाका जहां कहीं भी रिवाज हो उसे धीरे २ बंद कराना चाहिये जिससे अनर्थप्रवृत्ति रुक जाय।

साधु, सत्पुरुष, चिदानन्दमूर्ति सद्गुरु हैं, वे तो चारों प्रकारकी हिंसाको सर्वथा परित्याग कर शुद्ध चिदानन्दमें लीन हो जाते हैं। और आत्मोत्पन्न रसका आस्वाद करते रहते हैं, ऐसे सत्पुरुष लोकमें विरले ही हैं। सब नहीं। धन्य है ऐसे ऋषि राजोंको। ऐसे ही ऋषि संसारमें अपने मनुष्यजीवनको सार्थक करते हैं।

इसी प्रकार प्रत्येकमनुष्यको अपनी २ आत्मको प्रति दिन समझाना चाहिये।

न कृता विश्वशांतिश्चेद्बोधामृतप्रपानतः ॥
सारहीनोपदेशस्य करणात्किं प्रयोजनम् ॥ ३१ ॥

संस्कृतार्थ—बोधः सम्यग्ज्ञानं तदेवामृतं तस्य प्रकर्षेण पानतः विश्वशांतिः न कृता चेत् सारहीनस्य उपदेशस्य निष्फल-वचनव्यायामस्य करणात्किं प्रयोजनम् ?

अर्थ—ज्ञानरूपी अमृतके पानसे यदि विश्वशांति न की तो हे आत्मन्! तुझे निःसार उपदेशसे भी क्या प्रयोजन?

भावार्थ—मिष्ट प्रिय हितमित व सत्यभाषणमे सारे विश्वमें तेने शांति नहीं फैलाई तो व्यर्थ ही बकवाद करना केवल लज्जा की बात है। बुद्धिमान् वही मनुष्य है जो व्यर्थ, कारण विना वकवाद नहीं करें। क्यों कि हे आत्मन्! तू यदि शांति और सुख चाहता है तो पहले समस्त विश्व को शांति और सुखमय बना दे, तो तुझे सुख और शांति स्वयमेव मिल जायगी। जैसे कि, यदि पडोसीके मकानमें आग लग गई हो तो उस घर को बुझाना ही अपनी व अपने घर की रक्षा करना है। अगर तू यह विचार करे कि मेरा क्या नुकसान होता है उसका जलता है तो जलने दो, क्यों कि यह पराया है, आज उसका मकान जलेगा तो कल तेरा भी अवश्य जलेगा क्यों कि यह भी तेरे ही पास है इसी प्रकार ऐसे ही तू समस्त विश्वको अशांतमय बनायेगा। तो तुझे कहांसे शांति मिलेगी? इसलिए हे आत्मन्! तू समस्त विश्वको शांतिमय बनानेका प्रयत्न कर जिससे तुझे स्वयमेव शांति और सुख प्राप्त होगा इस प्रकार प्रत्येक मानव जातियों! आप प्रतिदिन अपनी २ आत्माको समझानेका प्रयत्न करो, ऐसी सद्गुरुकी आज्ञा है।

श्रीदस्य सद्गुरोः संग, कृतो न कारितो यदि ॥
कृतस्य कारितस्यान्यसंगस्य किं प्रयोजनम् ॥ ३२ ॥

संस्कृतार्थ—हे आत्मन् ! श्रीदस्य सद्गुरोः वीतरागगुरोः संगः सहवासः यदि न कृतः नापि कारितः तर्हि कृतस्य कारितस्य वा अन्येषां संगस्य किं प्रयोजनं सिद्ध्यति ?

अर्थ—यदि कल्याणकारक सद्गुरुकी संगति न की तो अन्यकी संगति करने करानेसे भी क्या प्रयोजन ?

भावार्थ—हे आत्मन् ! तू बहुत सोच विचार कर कि अनादिकालसे तू ऐसे मनुष्योंकी संगति करता आया जिससे तुझे सर्वत्र नाक रगडते हुए भटकना पडा और ऐसी २ आपत्तियोंका तुझे सामना करना पडा कि जो वचनसे भी नहीं कहे जा सकते। तो क्या ! अब भी तेरी बुद्धि ठिकाने नहीं आई ? जिनके द्वारा तूने अनन्तबार दुःख सहे फिरसे बार २ तू उनके पीछे पडता है। हे आत्मन् ! यह तो तेरे लिए बडी लज्जा की बात है। क्यों कि जिनके पीछे लगनेसे केवल दुःखके सिवाय कुछ भी हाथ नहीं आता है। जैसे गधे की पूंछ पकडने से मुख टूटने, दांत गिरनेके सिवाय और क्या लाभ होता है ? इसलिये तू विवेकपूर्वक विचार करके परमानन्दमूर्ति शुद्ध चिद्रूप सद्गुरुकी घडी दो घडी जितना भी बन सके सङ्गति करेगा उतनी ही तेरी आत्माकी शांति व कल्याणकी प्राप्ति होगी।

यदि यह कार्य सारा दिन न बन सके तो घडी दो

घडी जितना भी बने अपनी आत्माकी शांति व कल्याण के लिये सत्संगति करनी चाहिये।

चेतसि प्राणिमात्राणां, सन्निराकुलता यदि।
न कृता कारिता ह्यात्मन, किं कृतं तर्हि मे वद ॥२२॥

संस्कृतार्थ—प्राणिमात्राणां सर्वेषां सत्वानां चेतसि मनसि यदि समीचीना निराकुलता शांतिः न कृता नापि कारिता तदा हे आत्मन्! मे वद त्वया किं कृतं? न किमपीत्यर्थः।

अर्थ—हे आत्मन्! यदि तूने सब प्राणियोंके हृदयमें सच्ची निराकुलता न स्थापित की और न कराई तो बताओ फिर किया ही क्या है?

भावार्थ—हे आत्मन्! तू इतनी आकुलता और सङ्कटमें पडा हुआ है कि उसके अन्दर तू किंकर्तव्यविमूढ हो गया है। और तेरा जीव हमेशा इतना व्याकुल रहता है कि क्या करना चाहिए अथवा क्या नहीं करना चाहिए इसका तुझे कुछ भी भान नहीं है। अब भी हे आत्मन्। तू सोच विचार कि इतनी आकुलतासे तुझे क्या मिलेगा। जो कुछ तुझे मिलना है वह तो पूर्वभवके पुण्यसे मिल जायगा। फिर व्यर्थ आकुलता करने से क्या लाभ? क्यों कि लाभ तो स्वपरकल्याण करने से ही होगा।

इसलिये हमेशा उत्तमकर्तव्यको करते रहना चाहिये तब ही तेरी आत्मामें निराकुलता रहेगी। इसी प्रकार आत्मन्! तू स्वयं निराकुल बन और विश्वमें समस्त

प्राणियोंको निराकुल बनाने का प्रयत्न कर। क्यों कि—दुनियामें—निराकुलता ही सुख है और आकुलता ही दुःख है इसी तरह सोच विचार कर प्रत्येक प्राणिमात्रको शांति व धैर्यपूर्वक कार्य करते रहना चाहिए।

स्वात्मवत्सर्वभूतानि न दृष्टानि त्वया यदि।
मन्येऽहं त्वत्समं पापं महदन्यैः कृतं न को॥ ३४॥

संस्कृतार्थ—यथा स्वात्मनि दयाविधानमिष्यते तद्वदेव त्वया सर्वभूतानि अनुकम्पया न दृष्टानि चेत् तदा त्वत्समं, महत्पापं को लोके अन्यैः न कृतं इत्यहं मन्ये।

अर्थ—यदि अपने समान ही सब जीवोंको तूने दया दृष्टिसे नहीं देखा तो हे आत्मन्! तेरे समान इस दुनियामें किसीने पाप नहीं किया।

भावार्थ—अपने प्राणोंका मूल्य सभी समझते हैं उसी भांति यदि सबके प्राणोंकी भी रक्षाका ध्येय रखा जाय तो सर्वत्र शांति ही रहती है। यदि किसीने दूसरोंके प्राणोंको तुच्छ समझकर दयारहित प्रवृत्ति की तो वहींसे व्यवस्था भंग हो जाती है, इसलिए दया रहित क्रूर परिणाम या क्रिया ही सब पापोंका आदिस्रोत निकास है। अतएव संपूर्ण बुद्धिमान् पुरुषोंको अपने मनको समझाना चाहिए कि दूसरोंके प्रति कठोरताके भाव न रक्खें जिससे विश्वकी शांति व्यवस्था स्थिर रहे। बस, यही भाव सब जीव रक्खें तो संसारमें सच्ची बंधुता प्रगट हो जावे, जिस

का प्राप्त करना प्रत्येक मनुष्यका प्रधान कर्तव्य है। तथा अपने प्राणोंकी रक्षा करना और दूसरोंके प्राणोंकी हत्या करना यह पशुओंका आचरण है। क्यों कि उनमें [पशु-ओंमें] विवेक नहीं है। यदि पशुओंसे मनुष्योंमें अन्तर है तो केवल विवेकका ही है, और अपने प्राणोंके समान विश्वके संपूर्ण प्राणियोंकी हर तरहसे रक्षा करना ही विवेक है, और यही मनुष्य-कर्तव्य है। इसके विना हे आत्मन्! तू भले ही अपनेको मनुष्य व बुद्धिमान् समझ किंतु तू पशुके समान है। इस प्रकार प्रत्येक मनुष्यको प्रतिदिन अपनी आत्माको समझाना चाहिये।

येन केनाप्युपायेन स्वात्मा बुद्धो निरञ्जनः।
भवेत्स्वानन्दमूर्तिर्हि कुरु कार्यं तथा वरम् ॥ ३५ ॥

संस्कृतार्थ—येन केनापि उपायेन रीत्या स्वस्य आत्मा जीवः बुद्धः ज्ञानमयः निरञ्जनः निर्लेपः, स्वस्यानन्दमेव मूर्तिर्यस्य सः एवंभूतः भवेत् तथा तेन प्रकारेण वरं श्रेष्ठकार्यम् कर्तव्यं कुरु सम्पादेयम् ॥

अर्थ—जिस किसी भी उपायसे अपनी आत्मा ज्ञानमय निर्विकार आनन्दमूर्ति बन जावे, उसी तरह अपने श्रेष्ठकर्तव्य का आचरण करें।

भावार्थ—हे आत्मन्! आत्माको निर्विकारी निरंजन बनाना ही नरजन्मका फल है और शुद्ध आत्माको बनानेके लिए तुझे बडी बडी आपत्तियां सहन करनी पडेगी।

जैसे कि सौ बार तपाया हुआ ही सोना कण्ठमें पहनने लायक हो जाता है इसी तरह से उत्तम मोती, हीरा इत्यादि चीजोंका कूट मारसे परीक्षा करके ही कण्ठमें पहनाया जाता है और उसकी परीक्षा की जाती है। और मूर्ति जब खूब मार खाती है तभी पूजने योग्य बनती है, इसी तरह से दूध भी खूब मंथन किया जाय तभी उसमें से घी खाने योग्य निकलता है। इसी तरह हे आत्मन्! तुझे भी निर्विकार होनेके लिए अनेकभवसे अभ्यास करना पड़ता है। और उसके अन्दर तुझे कोई जहर भी पिलायेगा तो उनको हर तरह से तुझे अमृत पिलाने का प्रयत्न करना पड़ेगा, तब कहीं तेरा आत्मा शुद्ध बुद्ध चिद्रूप परमानन्द मूर्ति निर्विकारी जीवन्मुक्त बनेगा। न कि विषयकषाय आदिमें पड़े रहने से, मौज-मजा करने से तेरा आत्मा निर्विकारी व जीवन्मुक्त बनेगा।

इसलिए तू हर तरह से अपनी आत्माको शनैः शनैः प्रयत्न करके निर्विकारी सर्वसङ्गत्यागी बनानेका प्रयत्न कर। क्यों कि यह अनादिकाल का संसर्ग है। अतः एकदम आत्मा शुद्ध नहीं बन सकेगी। जैसे एक २ अक्षर पढ़ने वाला विद्यार्थी महान् पण्डित हो जाता है, एवं बाल्यकाल से अभ्यास करता हुआ पच्चीस व तीस वर्ष तक अभ्यास करेगा तभी व्याकरण, न्याय आदिका ज्ञाता बनता है। और एक एक बूंद पानी मिल कर नाला बनता है और कई नाले मिल कर नदी; व कई नदियां मिल कर बड़ा

भारी समुद्र बनता है। तथा इसी प्रकार एक एक कण अनाज मिल कर बडी भारी धान्यराशि एकत्रित होती है। इसीके अनुसार हे आत्मन्! तू एक एक भाव में एक एक विषयकषाय व मानका त्याग करेगा तो अवश्य ही एक दिन निरञ्जन निर्विकारी सर्वसंगपरित्यागी नारायण बनेगा। इसमें कोई सन्देह नहीं। अतः तू स्वयं कायरता एवं निराशताको छोड कर यदि अभ्यास करेगा तो अवश्य अपनी आत्माको परमात्मा बना सकेगा। इसी प्रकार प्रत्येक मानवमात्रको अपनी २ आत्माको समझाना चाहिये। यह कार्य मैं कैसे करूंगा कैसे होगा, इस प्रकार निराशापूर्वक विचार करना मनुष्यका कर्तव्य नहीं है।

मनुष्यका कर्तव्य तो यह है कि आई हुई घोर आपत्तिको भी लात मार कर उत्साह पूर्वक कार्य करना चाहिये जिससे आत्मा परमात्मा बन जायगी और विश्वशांति होगी।

विश्वशांतिके लिए युद्ध

बुद्धेः सुयुद्ध भवितव्यमेवमिथो नराणां भुवि विश्वशांत्यै॥
स्वप्नेऽपि न स्यान्नरनाशकारी, नौ वायुयानादिकयंत्रवर्गैः॥

संस्कृतार्थ—बुद्धेः मतेः विचारस्य वा, सुयुद्ध, मनन, चित्तचिन्तन परस्पर सप्रेमनीतिविमर्षण भुवि लोके भवितव्य, केषां? नराणां, विश्वशांत्यै प्राणिमात्राणां शात्यर्थ न खलु स्वमानख्यात्यादि वृद्धयर्थं भवितव्यं किंतु स्वप्नेऽपि स्वप्नावस्थायामपि नरसंहारकं नौकावायुयानधूम्रशकटादिकैः युद्धं कदापि नैव भवितव्यं इति तु मानवजातिमात्रै: चिन्तनीय यतो नरजन्म सफलं भवेत् तथा च विश्वशांतिर्भवेत्।

अर्थ—मनुष्योंको संसारमें विश्वकी शांतिके लिये परस्पर बुद्धिका युद्ध अर्थात् विचार तर्क आदिद्वारा युद्ध करना चाहिये। किन्तु स्वप्नमें भी मनुष्योंका नाश करनेवाले वायुयान जहाज बंम तोप इत्यादि द्वारा युद्ध नहीं करना चाहिये।

भावार्थ—विश्वमें दो जातियां हैं—एक तो मनुष्य जाति व दूसरी पशुजाति। इन दोनोंके चाल चलन, आचार विचार आदि प्रत्येक क्रियाओंमें रात दिनका अंतर है। इसलिए पशुमें यह बुद्धि नहीं कि प्राणीमात्र का हित करना मेरा कर्तव्य है। केवल खाने पीने व विषयोंमें ही उनकी बुद्धि दौडती है। और उसी विषयकी पुष्टिके लिए खाने पीने आदि के उद्देशसे गधा जिस तरह से दूसरेको लात मारता है तथा कुत्ता व्याघ्र आदि अपने दांतोंसे दूसरोंको काटते हैं तथा नाखुनोंसे दूसरे प्राणियोंका संहार करते हैं। एवं बलवान बैल आदि दुर्बल प्राणियोंको मार कर भगा देते हैं। और आप स्वयं उन्मत्त होकर फिरते हैं यदि यही वृत्ति मनुष्योंमें रहे तो फिर पशुओंमें और मनुष्योंमें क्या भेद रहा? मनुष्यजाति मात्रका आपसमें लडना व लडाना धर्म नहीं है। मनुष्य यह कार्य लडना झगडना पशुओंसे सीखता है अथवा पशु सरीखे ही देशमें व राष्ट्रमें मनुष्य हों उनसे सीखता है। इसलिए यह स्वभाव सिद्ध है कि लडना झगडना मनुष्योंका लक्षण नहीं है। अतः मानवजाति मात्रका वायुयान,

जहाज, तोप टैंक बम इत्यादिक वैज्ञानिक यंत्रोंसे परस्परमें लडना यह अपने ही खड्गसे अपना ही गला काटनेके बराबर हुआ। क्यों कि जितने भी वैज्ञानिक आविष्कार बनाये हैं ये संपूर्ण विश्वकी शांतिके लिए बनाये हैं। लडनेके लिए नहीं। अतः इन वैज्ञानिक यंत्रोंको जहां जिन की आवश्यकता हो वहां पहुंचाकर संपूर्ण संसारको सुखी बनानेका प्रयत्न करना चाहिये। कदाचित् विश्वशांतिके लिए मनुष्य को लडना ही हो तो परस्परमें बुद्धिका युद्ध करना चाहिये अर्थात् परस्पर प्रेम वार्तालाप से विश्वशां तिका उपाय चिंतवन करना चाहिये। यही मनुष्यका वास्तविक बुद्धियुद्ध है। इसके विना और युद्ध करना स्वयं ही अपना पशुपना प्रगट करना है। इसलिए प्रत्येक मानव-जातिको अपनी आत्मा है। इस प्रकार समझाना चाहिये। तथा तद्रूप आचरण करते रहना चाहिये। व स्वयं सुखी बननेका व दूसरोंको सुखी बनानेका प्रयत्न करना चाहिये।

विशेष शिक्षा

युध्दसे कभी भी विश्वमें सुख व शांति नहीं होगी कदाचित् यह मान लिया जाय कि किसी राजाने समस्त विश्वको जीत लिया तो भी मरते समय पृथ्वी उनके साथ नहीं गई। अथवा कालांतरमें दूसरा राजा या उसीका पुत्र उसको मार देगा या जेल में बंद करवा देगा। पूर्व इतिहासके देखनेसे विदित होता है कि राजा श्रेणिकको उसके पुत्रने ही जेलमें रक्खा था। और भी अनेक राजा-

ओंने इसी प्रकार किया था। जैसे शाहजहांको औरंगजेबने कैद किया। तथा अकबरके विरुद्ध जहांगीरने उपद्रव किया। जहांगीरके विरुद्ध शाहजांने उपद्रव किया। इत्यादि और भी अनेक इसी प्रकारके उदाहरण इतिहास में पाये जाते हैं। इसलिए हे राजाओं! व्यर्थ क्यों फिर पाप कमाते हो। आज कल जो विश्वमें लडाई हो रही है प्रायः उसका कारण पहलेका लडाई संबंधी इतिहास विदित होना है। क्यों कि प्राचीन युद्ध संबंधी इतिहासको देखकर ही आज कल राजावर्ग युद्ध में प्रवृत्ति करते हैं। इसलिए अन्याय युद्ध संबंधी संपूर्ण इतिहासको एकबारी में बंद करवा देना चाहिए। जिससे संसारमें कभी युद्ध होनेकी संभावना न हो।

कौ पंचपापानि न केऽपि कुर्यु'प्रोक्त्वेति तद्धेतु निरोध एव।
कार्यो यत स्यात् सकलात्मशांतिः पुनर्नृणां पापमतिर्भवेन्न॥

संस्कृतार्थ—कौ पृथिव्यां हिंसानृतस्तेयमैथुनलोभानि पंच पापानि नीचतमानि केऽपि मानवाः न कुर्युः, इति तु केवलं मुखेनैव नैव वक्तव्यं, किंतु पंचपापानां कारणानां निरोधः कार्यः। यतो—यस्मात् कारणात् भुवि लोके प्राणिमात्राणां सुखशांतिर्भवेत् स्यात् पुनः केषामपि मनुष्याणां हृदये पापबुद्धिः दुष्टस्वभावो न भवेदिति भावः।

अर्थ—संसारमें हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, लोभ इत्यादि पांचपाप कोई भी न करे ऐसा केवल वचनमात्रसे

ही न कहे किंतु इनका निरोध अर्थात् उन पापोंके कारणों को अवश्य ही रोकना चाहिए जिससे संपूर्ण आत्माओंको शांति होवे तथा मनुष्योंकी पाप बुद्धि न होवे।

भावार्थ—संसारमें प्रायः मनुष्य यह कहा करते हैं कि हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील व लोभ आदि पंचपाप कोई भी मत करो। इतना कहनेपर भी लोकमें इन पाप वृत्तियोंको नहीं करनेवाले बहुत थोड़े ही पुरुष होंगे। इस में मुख्य कारण यह है कि मनुष्य कारणों को न रोककर कार्योंको रोकनेका ही प्रयत्न करते हैं, सो कारणोंको विना रोके कार्य नहीं रुकते। जैसे किसी मनुष्यको ज्वर चढा हो तो ज्वर को न रोककर ज्वरके चढनेके कारणों को ही रोकना चाहिए। क्यों कि कारणोंके रुकनेसे कार्य भी रुक जायेंगे। जैसे नदीमें नांव डूबनेका कारण जो छिद्र है उसी छिद्रको यदि रोका जाय तो अवश्य ही नांव का डूबना बंद हो जायगा और छिद्रको न रोककर यदि नावकी रक्षा करना चाहो तो नावकी कदापि रक्षा न हो सकेगी। इसीके अनुसार पंचपापोंका मुख्य कारण निरु द्योगिता है। अतः प्रत्येक मनुष्यको यथोचित कार्यके अनु सार उद्योगमें लगा दिया जाय तो पंच पाप अवश्य रुक जायेंगे।

निरुद्योगी मनुष्य ही हिंसा करने, शिकार करने, जुआ आदि खेलने मे, जीवोंको मारने में लगेगा और उसी मनुष्यको समयानुसार काम करने में लगा दिया

जाय तो हिंसादिक अघःकर्मके करने में कभी प्रवृत्त नहीं होगा। इसी प्रकारसे झूठमें भी वही प्रवृत्त होगा जो निकम्मा अर्थात् उद्योगविहीन है तथा वही मनुष्य निन्दा करनेमें तथा इधर उधर चुगली करने में प्रवृत्त होगा कि जो निरुद्योगी होगा।

सम्पूर्ण विश्वमें २०० वा २५० करोड मनुष्य होंगे किन्तु उनमें से बहुत कम बिरले ही ऐसे मनुष्य मिलेंगे जो कभी झूठ नहीं बोलते हों। और संसारमें अनेक ऐसे मनुष्य हैं जो महात्माका भेष धारण कर आपसमें मत मतांतर में वैमनस्य की जागृति कराते हैं जिससे विश्वमें सर्वत्र अशांति फैली हुई है। ऐसे महात्माओंका खास कर्तव्य तो यह है कि दिन भर शांतिसे मौन धारण कर ध्यान स्वाध्याय आदिमें लगे रहें। तथा दिनमें एक आध घण्टा निष्पक्षपात से विश्वकल्याणकी भावनासे उपदेश देवें, तत्पश्चात् शान्तस्वभाव से मौन रहें। जिस प्रकार बिजली थोडी सी चमक कर शान्त हो जाती है तथा माँ और बहिनोंको भी प्रति दिन अपने घरके कार्योंसे निवृत्त होकर शेष समयमें धर्मध्यान, कोट, कमीज इत्यादि कपडों की सिलाई तथा चर्खा वगैरह कताई, बुनाईमें व इसी प्रकार अनेक प्रकार की कलाओंके सीखने में समय व्यतीत करना चाहिए। इधर उधर की व्यर्थ गप्पे लडा कर यह भव और परभव दोनो खराब नहीं करना चाहिये। तथा घरके मालिकको भी चाहिए कि वह अपनी

स्त्री, पुत्री, बहिन आदिको सच्चे उद्योगमें सतत लगाता रहे, इसी प्रकार प्रत्येक मनुष्यमात्रको व्यर्थ की झूठ, गप्प इत्यादि बातोंको छोड कर हमेशा सच्चे उद्योगमें लगे रहना चाहिए।

तीसरा पाप चोरी है। चोरी भी वही करता है जिसके पास न तो खाना है न पीना, केवल निरुद्योगी है। ऐसे चोरी आदि कार्यमें रत बेकार मनुष्यों पर राजा महा-राजाओंका ध्यान रहना चाहिये। और लोकमें ऐसे मनुष्योंको उनके योग्य कार्य में लगाना चाहिये जिससे कोई बेकार न रहे और प्रजावर्ग समस्त सुखी रहे। फिर तो संसारमें कहीं चोरी नहीं होगी।

राजाओंका जन्म ही विश्व कल्याणके लिये है। स्वपर कल्याण करनेवाले होनेसे ही राजाओंको देवता माना है। जैसे चन्द्रमाके बिना करोडों ताराओंके होने पर भी विश्वकी शोभा नहीं है, उसी प्रकार राजाओंके बिना भी विश्वकी शोभा नहीं है। राजाओंको प्रजाके प्रति इतना प्रेम प्रगट करना चाहिए कि वह प्रजाको भोजन कराके फिर भोजन करे और प्रजाके सुखमें सुख तथा प्रजाके दुःखमें दुःख समझे। जैसे माता पुत्रको पालन करते हुए पहले पुत्रको भोजन आदि देकर पश्चात् भोजन करती है धेनु पहले अपने बछडेको दूध पिलाती है पश्चात् घास चरनेके लिए जाती है, इसी प्रकार राजाओंको भी प्रजाको पुत्र समझ सच्चे उद्योगमें हमेशा लगाते रहना चाहिए और प्रजाको भी राजाज्ञाको

फूलमालाके समान जान कर कंठमें पहनना शिरोधारण करना चाहिए। और चोरी झूठ आदि नीच कृत्योंको छोडकर स्वपरकल्याणकारी उद्योगोंमें लगना व लगाना चाहिए। ऐसा होनेपर फिर तो कभी संसारमें चोरीका निशान भी नहीं रहेगा।

चौथा पाप कुशील है। योग्य वयमें विधिपूर्वक विवाह न होनेसे तथा बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, अनमेल-विवाह होनेसे देशमें व्यभिचार अपनी चरमसीमाको पहुंचा हुआ है एवं विधवाओंकी संख्या दिन प्रतिदिन बढती जाती है। अतएव राजा महाराजाओंको अपने अपने राज्यमें वृद्ध-विवाह, बाल-विवाह, और अनमेल विवाहको बहुत शीघ्र ही रोकना चाहिए। और विधिके अनुसार समयपर ही विवाह कराना चाहिए जिससे देशमें विधवाओंकी संख्या कम होवे। और सदाचारका सर्वत्र प्रचार बढता रहे। इसीके होनेपर ही सर्वत्र शीलका प्रचार बढता रहे। इसीके होनेपर ही सर्वत्र शीलका प्रचार व व्यभिचारका नाश होगा। शील पालना मनुष्यका खास कर्तव्य है। शीलहीसे बलिष्ठ आत्मशक्तिधारी व स्वपरकल्याण करने योग्य बनता है।

इससे शीलको पालना प्रत्येक मनुष्यमात्रका कर्तव्य है।

इस दुष्ट लोभने संपूर्ण विश्वमें हाहाकार मचा रक्खा है इस लोभके वश होकरके क्या राजा और क्या प्रजा सब पशुवृत्तिका अवलंबन करके संपूर्ण विश्वको दुःख दे रहे हैं। इससे कदापि सुख व शांति नहीं हो सकेगी। और

यह मनुष्यका कर्तव्य नहीं है। किंतु यह पशुवृत्ति है। जैसे बिल्ली छिप २ करके और निरुद्यमी होकर चूहेपर आक्रमण करके उसकी जिंदगीको पूर्ण कर देती है, जैसे सांप सर्वथा निरुद्यमी होता हुआ चूहा आदिके घरमें प्रवेश कर उनका भक्षण कर उनके रहनेका मकान भी अपने कब्जेमें कर लेता है, जैसे बगुला पानीमें एकाग्र चित्तसे मच्छियोंके शिकारके लिए ध्यान करते हैं और मौका आनेपर मछ-लियोंके सारे वंशको ही नष्ट कर देता है, जैसे सिंह बडा भारी शक्तिवान् होता हुआ प्राणियोंकी रक्षा करना छोड कर प्राणियोंको मारकर अपना पराक्रम दिखाता है जैसे बन्दर बिलकुल निरुद्यमी होकर बैठा रहता है और शीत उष्ण जैसे महान् दुःखोंको सहन करता है, समय आनेपर किसी घर बगीचेमें घुसकरके फल फूल आदिको विध्वंस कर देता है तथा सारे बगीचेको ही नष्ट कर देता है। तथा कोई निरुद्यमी पुरुष हाथमें जाल लेकर जंगल आदिमें उसे बिछा कर निरपराधी गरीब स्वतन्त्र जीवोंको नष्ट कर अपना कार्य साधता है, अपने नीचपनेको दर्शाता है पूर्वोक्त ठीक इसी वृत्तिको राजा व प्रजा तथा सम्पूर्ण देशने अवलम्बन किया है।

जैसे एक राष्ट्र बिलकुल निरुद्यमी होता हुआ स्वेच्छाचार में मग्न होकर अपनी आशाओं व तृष्णाओंको तृप्त करने के लिए अनेक राष्ट्रोंपर आक्रमण करता है। तथा अनेक राजावर्ग बडे २ वैज्ञानिक यंत्रोंसे विश्वकी रक्षा करना

छोड कर इन्हीं वैज्ञानिक यंत्रोंसे अपने स्वार्थ की सिद्धिके लिए सारे देशको ही विध्वंस करते हैं अर्थात् स्वयं धन न कमाकर दूसरेके ऊपर धावा करते हैं। सो—

हे राजाओ! व प्रजाओ! इस तरहसे आपकी तृष्णा इन अनुचित कृत्योंसे कदापि नहीं मिटेगी, किंतु चौगुनी बढती ही जायगी। जैसे तृणके ऊपर पडे हुए जलबिंदुसे कोई भी मनुष्य अपनी प्यास (तृष्णा) को नहीं बुझा सकता। यदि वही मनुष्य मीठे जलसे भरे हुए सरोवर, नदी, वापिका आदिका जल पीवेगा तो अवश्य ही उसकी तृष्णा प्यास शान्त होगी।

इसी प्रकार दूसरे देशको अथवा राज्यको हडप करके कोई भी मनुष्य अपनी तृष्णाको कल्पान्तकालमें भी शांत नहीं कर सकेगा। इसलिए हे मानव जातियो! इस व्यर्थ के कोलाहलको बंद करिये।

और अटूट धन देनेवाली यह पृथ्वी है अतः इसका वास्तविक सार्थक नाम वसुंधरा है। सारे विश्वकी तृष्णा को शांत करनेवाली यही वसुंधरा पृथ्वी ही है। विश्वके सिवाय यदि दस गुना विश्व बढ जाय तो भी यह वसुं-धरा सबकी आशा को तृप्त कर देगी। इसलिए प्रत्येक राष्ट्रको अपनी प्रजाओंको उद्यमशील बना करके वसुंधरासे इतना धन कमाना चाहिये कि वह कभी समाप्त न होवे। और धन पैदा करनेके लिए अपने २ राष्ट्र में

खूब प्रयत्न करना चाहिए। और संपत्तिसे सारे खजानों को भर देना चाहिए। और उन खजानोंका दरवाजा अपने २ राष्ट्रकी प्रजाके लिए तो अवश्य ही खुला रहना चाहिए। किंतु परराष्ट्रके लिए भी खुला रहना चाहिए यहां रंच मात्र भी क्षोभ नहीं करना चाहिए।

इतना ही नहीं किंतु सपूर्ण राष्ट्रसे यह विनय करना चाहिए कि आप जितना द्रव्य चाहे ले जाइये और हमारे परिश्रमको सफल बनाना। यह सब संपत्ति आपकी ही है। इस प्रकार प्रत्येक राष्ट्रको दूसरोंको विना कर्जके देनेके लिए भाव रखना चाहिये; स्वप्नमें भी लेनेके भाव नहीं होना चाहिये। कदाचित् स्वभाविक कोप हो जैसे हिमपात, अग्नि, भूकम्प, आदि से सारा देश जल गया हो अथवा नष्ट होगया हो तो उस वक्त तो परराष्ट्र देते ही हैं। उसे लेना ही चाहिये और लेकर अपने राष्ट्रकी प्रजाको सुखी बनाना चाहिए। इसके सिवाय दूसरोंके धन संपत्तिकी कल्पकालमें भी वांछा नहीं रखनी चाहिए। अपनी कला कौशलसे व विज्ञान आदिसे सारे विश्वको अपनी धन संपत्ति से तृप्त करना चाहिए। यही मानव जातिमात्रका कर्तव्य है और इस मनुष्य कर्तव्यके करनेपर यह लोक मनुष्य-लोक ही नहीं किंतु देव-लोक बनेगा। और हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, लोभ आदि पाप दुनियासे अपना मुंह काला करके सदाके लिए पलायन कर जायेंगे।

सारांशः

तुभ्यं चात्मन परायेति ह्युपदेशोऽस्ति चान्तिमः ॥
अत. स्यात्सफलं जन्म नोचेत्तर्हि वृथा श्रमः ॥ ३६ ॥
तत्कृत्यं कार्यमेवात्मन् यतो वैर मिथो न हि ॥
वा कदाप्यकृत्यस्यावश्यकता भवेन्न ते ॥ ३७ ॥

संस्कृतार्थ—हे आत्मन् ! तुभ्यं स्वस्मै परस्मै वा इत्येवान्तिमः उपदेश· शिक्षणमस्ति. अतः अस्मादेव जन्म जीवनमिदं सफलं अन्यथा अन्यप्रकारेण श्रमः आयासः वृथा स्यात् । उत आत्मनः निर्मलीकरणाख्यं कृत्यं कार्यम् यतो हि मिथः परस्परं वैरं द्वेषभावः न भवेत् तथा तदाऽपि अन्यकृत्यस्यापि आवश्यकता न भवेत् ।

अर्थ—हे आत्मन ! स्वय तेरे लिये और दूसरोंके लिये भी यही अंतिम उपदेश है इसीसे जन्म सफल होता है, नहीं तो सारा परिश्रम व्यर्थ है। हे आत्मन् ! अपनेको निर्मल निरञ्जन बनाना यही कर्तव्य है। इसीसे परस्परमें वैर तथा अन्यकृत्यकी आवश्यकता न रहेगी। अर्थात् कृतकृत्य हो जाओगे।

भावार्थ—हे आत्मन् ! तुझे बहुत कहनेसे क्या प्रयोजन ? यह तुझे अंतिम उपदेश है कि विश्वशांतिके लिये ऐसे कार्य करना कि फिर तुझे कभी उस कामके करने की आवश्यकता न पडे तथा आत्मशांति व विश्व शांतिके लिये तुझे ऐसे कार्य करना चाहिये कि फिर तुझे कभी उसके सोचने की चिन्ता न रहे। और विश्वमें कभी किसी से वैर वैमनस्य न रहे। यही सद्गुरुका

आशय है, सो ठीक है। क्यों कि माता पिताके हमेशा ये भाव रहते हैं कि पुत्र सुखी और स्वस्थ रहे। उसी प्रकार सद्गुरुका पुत्र सारा विश्व ही है। अतः पुत्रका हित चिन्तवन करना ही गुरुका कर्तव्य है और उसीका नाम सद्गुरुता है।

अभिप्रायोऽस्ति मे चैव स्वात्मतृप्तस्य धीमतः ॥
सूरेः श्रीकुंथुसिन्धोश्च कृत्याकृत्यादिवेदिनः ॥ ३८ ॥
ज्ञात्वेति सद्गुरोः भाव तदाज्ञां परिपालय ॥
यतः स्यात्सफलं जन्म क्रियापि फलदा भवेत् ॥३९॥

संस्कृतार्थ—धीमतः स्वात्मतृप्तस्य कृत्याकृत्यादिवेदिनः सद्गुरोः सूरेः श्रीकुंथुसिंधोः ग्रंथकर्तुः अभिप्रायोऽस्ति स उक्तः इतिभाव ज्ञात्वा तदाज्ञां परिपालय, यतः जन्म सफल स्यात् एवं क्रियापि च फलदा भवेत्। अतीव सरलार्थ वादर्थो न लिखितः।

अर्थ—परम बुद्धिमान्, कृत्याकृत्यविवेकी, सद्गुरु आचार्य श्री कुंथुसागरजी महाराजने जो अभिप्राय व्यक्त किया है उसका भाव समझ कर उनकी [गुरुकी] आज्ञा का पालन करो जिससे कि जन्म सफल हो और क्रिया फलदायिनी हो।

भावार्थ—श्री पूज्यपाद प्रातःस्मरणीय, विश्वोद्धारक विद्वद्वर्य आचार्य कुंथुसागरजी महाराज आशीर्वादात्मक आज्ञा भव्यप्राणियोंको देते हैं। सो उस आज्ञाको पालन करके प्रत्येक मनुष्यमात्र कृतकृत्य होवो, इस मनुष्यपर्याय की सफलता इसीमें है।

प्रशस्तिः ।

आचार्यशांतिसिंधोश्च जगत्पूज्यस्य श्रीमतः ।
सूरेः सुधर्मसिंधोर्हि प्रसादात्कुंथुसूरिणा ॥ ४० ॥
लिखितो विश्ववन्द्येन धीमता विश्वशांतये ॥
मनुष्यकृत्यसारोऽयं ग्रंथः सच्छांतिदः सदा ॥ ४१ ॥

संस्कृतार्थ—जगत्पूज्यस्य श्रीमतः, आचार्यश्रीशांतिसिंधोः सूरेः श्री सुधर्मसिंधोः हि प्रसादात्, विश्ववन्द्येन, धीमता श्रीकुंथुसागर सूरिणा विश्वहिताय अयं मनुष्यकृत्यसारनामकः ग्रंथः, कीदृशः सदा सच्छांतिदः लिखितः विरचितः ।

अर्थ—जगत्पूज्य ज्ञानी दीक्षागुरु श्रीआचार्य शांतिसागरजी एवं विद्यागुरु सुधर्मसागरजीके प्रसादसे, अनुग्रहसे विश्वकल्याणके लिए विश्ववंद्य आचार्य श्रीकुंथुसागरजीने शांति देनेवाला यह " मनुष्यकृत्यसार " नामक ग्रंथ रचा है । सद्गुरुओंका स्मरण करना यह तो सत्पुरुषोंका कर्तव्य ही है ।

स्वयं कर्माणि पापकृत्यानि दुःखदानि भवे भवे ॥
कुर्वन्त्येकाग्रचित्तेनोपदेशेन विना जनाः ॥ ४२ ॥
अत एवात्र भव्यानां सिद्धये गुरुणार्थतः ॥
सत्कृत्यानां मुदा दत्त उपदेशः सुखप्रदः ॥ ४३ ॥
सत्सर्वप्राणिपात्रेभ्यः श्रीचिन्तामणिवद्भुवि ॥
सुखशांतिविधाताभूद्जीयादाचन्द्रतारकम् ॥ ४४ ॥

संस्कृतार्थ—को लोके भवे भवे दुःखदानिशेषकृत्यानि भोगोप भोगादीनि, जना उपदेशेन विना एव एकाग्रचित्तेन स्वयं कुर्वंति अत एव सद्गुरुणा अर्थतः वस्ततः भव्याना सिद्धये सुखप्रदः श्रीसत्कृत्यानामुपदेशः मुदा दत्तः। सदुपदेशः भुवि लोके सर्व प्राणिभ्यः चिन्तामणिवत् सुखशांतिविधाता सन् आचन्द्रतारकम् जीयात्।

अर्थ—भवभवमें दुःख देनेवाले अन्य भोग आभोग परिग्रहका सञ्चय आदि कृत्य तो दुनियाके लोग बिना ही उपदेशसे दत्तचित्त होकर करते है. इसलिये सद्गुरुने वास्तवमें भव्योंके हितार्थ यह सत्–कर्तव्योंका ही उपदेश दिया है। सब प्राणियोंको श्री और चिन्तामणिके समान सुखदायक और शांतिका विधाता यह ग्रन्थ, तारे और सूर्य चन्द्रमा जब तक हैं तब तक जयवन्त रहे।

सत्प्रीतिन्यायनिष्ठेन मिथश्शांतिप्रदायिना ।
लक्ष्मणसिंहभूपेन स्वात्मवत्परिपालिते ॥ ४५ ॥
गिरिपुरे धनाढ्ये च तडागोद्यानशोभिते ।
प्रभोःस्तोत्रसमाकीर्णे स्थित्वादीश्वरमन्दिरे ॥ ४६॥
मोक्षं गते महावीरे अहिंसायाः प्रचारके ॥
चतुर्विंशतिसंख्याते ह्यष्टषष्ठ्याधिके शते ॥ ४७ ॥
श्रावणेशुक्लपक्षे च ह्यष्टम्यां बुधवासरे ।
'मनुष्यकृत्यसारोऽयं' ग्रन्थो ग्रन्थिविनाशकः ॥४८॥
धीमता स्वात्मनिष्ठेन कुंथुसागरसूरिणा ।
लिखितः प्राणिनां शान्त्यै न ख्यात्यादिकहेतवे ॥४९

संस्कृतार्थएवेतेषामतीव सरलऽर्थान लिख्यते।

अर्थ—प्रजाको शांतिसे अपने ही समान पालन करनेवाले, नीति व न्यायनिष्ठ श्री लक्ष्मणसिंह भूपके द्वारा शासित, तालाव बगीचे आदिसे सुरम्य तथा धनाढ्य डूंगरपुर [गिरिपुर] में आदिनाथ भगवानके मन्दिरमें स्थित होकर यह ग्रन्थ पूर्ण किया है।

अहिंसा धर्मके महान् प्रचारक महाप्रभु महावीरके २४६८ निर्वाण सम्वत् में श्रावण शुक्ला अष्टमी बुधवारको मन के सब शल्योंको मिटानेवाला मनुष्यके सम्पूर्ण कार्योंका सार है जिसमें ऐसा यह ग्रन्थ आत्मनिष्ठ श्री आचार्य महाराज कुंथुसागरजीने शांतिकाधार्थ रचा है। किसी नाम बढाई आदिके लिये नहीं रचा है।

भावार्थ—वास्तवमें श्री लक्ष्मणसिंहजी राजा प्रजावत्सल, धर्मनिष्ठ, विवेकशील, शांतिप्रिय, आत्महित मुमुक्षु हैं। तथा इनके भाई,माता, पिता आदि सब ही धर्मप्रिय व धर्ममूर्ति हैं। इनका जन्म ही सद्गुरु व विश्वकी सेवाके लिये हुआ है।

आपके राज्यमें सम्पूर्ण प्रजा सुखी व आनन्दमें हैं। आज कल सर्वत्र हाहाकार कोलाहल व अशांति है। किन्तु आपके राज्य में पूर्णतः शांति है। यहां पर वृष्टि भी समय पर हुई है।

भाग्योदयसे यहां पर पूज्यपाद आचार्यवर्य श्री १०८श्री कुंथुसागरजी महाराजने चतुर्विध संघसहित पधार कर चातु-

मास किया है। इस चारमासके अन्दर यहांके राजासाहब व संपूर्ण राज्यकुटुंबने जो गुरुभक्ति व सेवा की है सो प्रशंसनीय तो है ही, किंतु राजा कर्ण, धर्मराज, जनक, रामचंद्र, भरत आदिका आपने स्मरण दिलाया है सो ठीक ही है, किंतु जिसकी जैसी गति होती है उसकी वैसी ही मति होती है।

— सारांश —

जो भाग्यशाली व भविष्यमें महान् ऋद्धिशाली होगा वही तो सद्गुरुकी सेवा करेगा। यह कार्य सामान्य पुरुषों [अभागी मनुष्यो] के लिए दुर्लभ है।

अंतिम निवेदन।

प्रमादादिवशान्मे स्याद्ग्रन्थेऽस्मिन् स्खलनं बुधाः ॥
पठंतु शोधयित्वेति ग्रन्थकर्तुः शुभा मतिः ॥ ५० ॥

संस्कृतार्थ—भो बुधाः ज्ञानिनः यदि अस्मिन् ग्रंथे प्रमादवशादज्ञानवशाद्वा स्खलनम् स्यात्तर्हि शोधयित्वा पठन्तु इति ग्रंथकर्तुः श्रीकुंथुसागराचार्यस्य शुभामतिः निवेदनमस्ति।

अर्थ—हे ज्ञानी जनो! यदि इस ग्रंथमें प्रमादसे या अज्ञानसे कोई स्खलन हो गया हो तो आप सुधारकर पढें ऐसा ग्रंथकर्ता का नम्रनिवेदन है।

भावार्थ—सिद्धान्त, व्याकरण, काव्य आदि विद्याका अन्त नहीं है इसलिये इस ग्रन्थके अन्दर कोई स्खलन भाग रह गया हो तो उसे शुद्ध कर पढें। केवल पढें ही नहीं किन्तु आचरण करें, क्यों कि केवल विचार करने व

बोलने मात्रसे कार्य की सिद्धि नहीं होती है। किन्तु तद्वत् आचरण करने से ही होती है।

अंतिम कामना

यह " मनुष्यकृत्यसार " नामक ग्रंथ संपूर्ण मानव समाजके कल्याणके लिए बनाया है। सो यह ग्रंथ व ग्रंथ कर्ता पूज्यपाद विद्वद्वर्य आचार्य श्री कुंथुसागरजी महाराज तथा डूंगरपुर राज्यके नरेश धर्मनिष्ठ, दयापालक, प्रजा वत्सल श्री लक्ष्मणसिंहजी महाराज प्रजाको व विश्वको सुख तथा शांति देते हुए आचन्द्रदिवाकर पर्यन्त जयवन्त रहें यही हमारी (समस्त प्रजाकी) देवाधिदेव त्रैलोक्याधिपति परमात्मासे प्रार्थना है।

ॐ शांति। शांतिः।। शांति।।।

इति श्रीमच्चारित्रचूडामणि विद्वद्वर्याचार्यवर्य श्री कुंथुसागर विरचितोऽयं " मनुष्यकृत्यसार " ग्रन्थः समाप्तः।

श्रीआचार्य कुंथुसागर ग्रन्थमाला.

उद्देश—परमपूज्य आचार्यश्रीके द्वारा रचित ग्रंथोंका प्रकाशन व प्रचार करना व अनुकूलताके अनुसार इतर प्राचीन जैनग्रंथोंका उद्धार तथा प्रकाशन करना है।

सामान्य नियम.

१ इस ग्रंथमालाको जो सज्जन अधिकसे अधिक सहायता देना चाहेंगे वह सहर्ष स्वीकर की जायगी।

२ जो सज्जन १०१) या अधिक देकर इस ग्रंथमालाका स्थायी सभासद बनेंगे उनको ग्रंथमालासे प्रकाशित सर्वग्रंथ पोस्टेज खर्च लेकर विनामूल्य दिये जायेंगे।

३ जो सज्जन ५१) या अधिक देकर हितचिंतक बनेंगे उनको पोस्टेज व अर्धमूल्य लेकर प्रकाशित ग्रंथ दिये जायेंगे।

४ जो सज्जन २५) या अधिक देकर सहायक बनेंगे उनको पोस्टेज व लागतमूल्य लेकर प्रकाशित ग्रंथ दिये जायेंगे।

५ अन्य सज्जनोंको निश्चितमूल्यसे दिये जायेंगे।

६ ग्रंथोंके मूल्यसे आई हुई रकमका उपयोग ग्रंथमालाके द्वारा प्रकाशित होनेवाले ग्रंथोंके उद्धार में ही होगा।

७ ग्रंथमालाके ट्रस्टडीड होकर मुंबईमें वह रजिस्टर्ड होचुका है।

सहायता भेजनेका पता—**सेठ गोविंदजी रावजी दोशी**

ठि. रावजी सखाराम दोशी, मंगलवार पेठ. **सोलापुर.**

ग्रंथमालासंबंधी सर्व प्रकारका पत्रव्यवहार नीचे लिखे पतेपर करें

वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री

मंत्री—आचार्य कुंथुसागर ग्रंथमाला, **सोलापुर.**

SUBSTANCE OF MAN'S DUTIES.

Having bowed joyfully to the unblamable God Shiva, Vishnu, Buddha, Jina (or whatsoever He may be called) and to their Holiness Shantisagar and Sudharmasagar who bestowed learning and concentration, this book named "SUBSTANCE OF MAN'S DUTIES " giving good peace forever, is written by his revered Holiness KUNTHUSAGAR who is intent on his soul. 1-2

THE VOW OF THE AUTHOR.

I gladly tell the good duties for the meritorious cause of beings. Let the meritorious achieve bliss doing them. This is the thought of the good preceptor. [3]

Question—Please tell me how many duties of beings are there in the world.

Answer—There are seven duties of men; they give happiness

Question—What are the seven duties ? Please tell me their mark as well as names. Having known them to the best of my power, I shall always do them for the final beatitude. [1]

THE SEVEN DUTIES ARE OBSERVED.

[1] Taking education [2] Service to the good [3] giving donation [4] earning money with the

right course [5] reflection of the self [soul] [6] praise of God [7] equal regard for all beings These are the seven duties of all beings, described as giving happiness and for the purpose of external peace [4-5]

FIRST DUTY.

First all beings should take education, which gives happiness, adopting measures whatsoever. By this peace will rule every where

Just as a night does not appear beautiful without the moon, or a flower without smell is useless in this world, so also without education appearance, dress, ornaments, etc. and the life itself will be to no purpose [6 7]

SECOND DUTY.

Service to God and the preceptor gives happiness, leads to heaven and liberation and destroys calamities, so it should be done devotedly.

According to one's strength one should gladly do service to all beings including the helpless etc It should be done to oneself, to one's soul, and to brothers It creates love among themselves. [8-9]

THIRD DUTY

It is said that it is sin alone to eat (or enjoy) the riches of the forefathers, so good wealth should be earned according to, right plans.

From it the life will be fruitful and religion

and race will be protected; eacing wrongly obtained wealth will bring chaeos, so that life will be the same as death. [10-11]

FOURTH DUTY.

Having given food and cloth according to one's ability to the group of four kinds of sages and nuns, which donation gives prosperity, and having given things such as house, [land] etc. to the poor; one should eat the pure food and d › other things.

The unfortunate man who earns wealth only for eating and not for donating, is a fool and is regarded like a worm or a dog which wanders from one house to another for food.

FIFTH DUTY.

Having done prayer which gives prosperity, to the unblamable God and to the good preceptor; one should try according to means, to install His virtues in oneself. The wise man who tries to be as pure as God, is liable to become the unblamable God. He is the real praiser of God in the world. [12-13]

Question—Oh ! sage, please tell me what is the mark of the sixth duty ?

Answer—All beings should gladly protect the animals in the world.

SIXTH DUTY.

Where have I come ? where and whence am I to go ? what should always be done [about himself and others] ? Inquiring about happiness and

sorrow of each other, giving food, cloth, and house etc. doing service politely [to others], discussing of one's soul, happiness, etc. passing time with good behaviour, Oh ! King, from this your life will be successful. [14-15]

SEVENTH DUTY.

Have equal regard which gives joy, for your country or for a foreign land, or for enemies or your brothers By this everlasting peace will rule every where, even love and joy will rest among ourselves and in the three worlds

Doing all the duties mentioned above let all the beings be happy. This is the thought of the kind preceptor Shri Kunthusagar who is as if the idol of happiness and calmness. [16-17]

End of First Canto

SECOND CANTO.

It is the duty of a king to protect the saints believing in religion, (also) he should punish the wicked and those who side with them. [18]

Everlasting purity is obtained by the protection of the sages, so also purity is rightfully obtained by the punishment of the wicked. [19]

The chief idea of a king's duty is that the subjects are as if his sons and grandsons, that the religious, the saints should get tranquility and that they may live peacefully among themselves [20]

The guilty are punished not for fame nor for any advantage nor through partiality, but for their improvement alone. [21]

Just as even a son is punished for the sake of good education; but there is no intention of creating fear on the part of the person who gives punishment; so also there is no bad intention of the kind king who gives punishment, he has only a benevolent regard for the welfare of all. [22-23]

Really speaking purity is achieved by the punishment to the wicked also; this is told before by the good preceptor Kunthusagar to maintain peace in the world. [24]

End of Second Canto.

THIRD CANTO.

A man should not live at a place where there is not always pleasing and unselfish love between ach other or where there is not any rule of rotherhood.

Even wisemen who do not observe the rule of sympathy (love) are like beasts. Having known this let the learned people be endowed with the rule of love. [25-26]

Oh ! purified soul, had you not done or made others do friendship with all beings, what great deed, oh ! fortune-giver, might have you achieved in this world ? [27]

Oh ! soul, if you have not set aside bad anxieties from you, what pleasure-giving great work have you done ? [28]

Oh, soul had you not avoided the wandering [rebirth] through the world. etc, tell what purpose of your wisdom would there have been ? [29]

Had you not devotedly manifested the peace-ensuing religion of non—killing, what purpose would there have been of doing other thousands of works ? (30)

Had you not made world-wide peace by making others drink the nector of your advice, what purpose would there have been of your fruitless sermons ? (31)

Had you not done or made others to do friendship with the fortune-giver good preceptors, what purpose of your other associations would there have been ? (32)

Had you not created or made others to create serenity in the minds of all beings, Oh soul, tell what else did you do ? (33)

Oh soul, had you not shown compassion on all beings as on yourself; I think nobody might have done a great sin like that in the world (34)

Do this good work adopting any remedy that your own soul may be enlightened, unblamable, and an idol of joy. (35)

For the world-wide peace in the world, there surely takes place an intellectual fight among men

but a man should never fight even in his dream with warships, bombers, (aeroplanes) or any sort of machines which are very destructive

Nobody should do the five sins killing, telling a lie, theft, sexual intercourse, and covetousness) in the world, this should not only be spoken by the mouth, but it should be suppressed. One should do that thing from which peace for all beings might ensue. Let there be not sinful thoughts of men

Oh ! soul for yourself or for others, this is the last (word of) advice See that your life will be successful, otherwise your labours will be of no use. (36)

Oh ! soul, that thing should be done by which there should not be enemity among men and there should be no necessity of doing other things by you. (37)

This alone is the opinion of mine of the learned preceptor Shri Kunthusagar who is satisfied in his soul and who knows what should be done and what should not be done (38)

. Having known this thought of the good precepter, obey his commands from which your life will be successful, and the deeds done inaccordance with them will be fruitful. (39)

This book " Substance of man's duties " always giving peace, is written for the welfare of the world by his learned Holiness Kunthusagar by the grace of his Holiness Shantisagar who is

praised by the world, and of the learned sage Sudharmasagar (40-41)

Men with a concentrated mind do all the deeds which give misery in different lives, by themselves without getting any advice. (42)

So the good preceptor has gladly given this good advice regarding the good duties for the eternal attainment of the fortunate beings (43)

Let this book (advice) bestowing peace and happiness on all beings in the world like the 'Chintamani' jewel reign supreme till there are the sun, the moon and the stars. (44)

This book "Substance of man's duties" is written for the peace of men and not for fame by the learned preceptor Kunthusagar who is intent on his soul. It is written on Wednesday the eighth-day of the bright half of the month of Shravan in the 2468th year of Lord Mahavir's getting the final beatitude. It is written in the "Adinath temple" built in the rich city Dungarpur which shines with its tanks and gardens It is written in the capital city of His Highness Laxmansimha who loves good moral manners and justice, who gives peace to all his subjects and whom he protects like his own soul (45-49)

It is the auspicious wish of the author that if there be any mistakeet the learned men read them after making (necessary) correction (50)

श्री आचार्य कुंथुसागर ग्रंथमालाके स्थायिसदस्य

१ श्री दि. जैन मंदिर जहेर
२ श्री. दि. जैन मंदिर नरसीपुर
३ शा. हेमचद पीतांबरदास नरसीपुर
४ शे. उगरचंद अमथालाल ,,
५ शा. हरजीवनदास नारायणजी जहेर
६ दामोदरदास चहेचरदास ,,
७ शा. शिवलाल हरगोविंददास नरसीपुर
८ परी शिवलाल फतेचद जहेर
९ ब्र. प्यारीबाईजी हाथरस
१० शा पुरुषोत्तमदास मगनलाल जहेर
११ शा. भीखालाल रायचद ,,
१२ शा. फतेचंद दोलचंद ,,
१३ शा. मणिलाल केवलदास ,,
१४ परी अमीचद देवकरण ,,
१५ परी हरचंद गारधनदास ,,
१६ शा नेमचद तलकचंद नरसीपुर
१७ शा नेमचंद त्रिभुवनदास ,,
१८ शा. केशवलाल लल्लुभाई ,,
१९ शा हरीलाल शांतिदास जहेर
२० शा शिवलाल लल्लुभाई ,,
२१ शेठ माकरचंद जगजीवनदास नरोडा
२२ शा छोटालाल पीतांबरदास नरसीपुर
२३ शा हरीलाल मगनलाल जहेर
२४ श्री दि जैनमंदिर विजयनगर
२५ शा. चिमनलाल माईलाल मेहलाव
२६ शा केवलदास रावजीभाई ईडर
२७ शा हीरालाल फतेचंद सावली
२८ शा कालीदास नानचंद ईडर
२९ सेठ अबीरचंद लखमीचंद कटनी
३० सेठ भोपजी शंभुरामजी मंदसोर
३१ शा मंगालाल पीताम्बरदास नरसीपुर
३२ शा मणीलाल जेसिंगभाई अहमदाबाद
३३ हरिचद वस्तादास कडियादरा
३४ चिमनलाल शिवलाल कलोल
३५ चुनीलाल नरोत्तमदास नरसीपुर
३६ दोशी मणिलाल नानचद ईडर
३७ श्री पार्श्वनाथ दि जैन मंदिर ,,
३८ दोशी सूरचद उजमभाई ,,
३९ छगनलाल जेठाभाई पोशीना
४० सि. तोडरमल कन्हैयालाल कटनी
४१ शाह वाडीलाल जगजीवनदास (सुमनलाल वाडीलाल) कलोल
४२ सेठ मोतीलाल मगनलाल जाम्बुडी
४३ सेठ माणिकचद माईचद ,,
४४ सेठ मगनलाल कोदरलाल बडोली
४५ पनालाल उमाभाई अहमदाबाद.
४६ संकेश्वर मणिलाल शिवराज ईडर
४७ संकेश्वर वीरचंद उदयचद ,,
४८ मेहता रायचद माणिकचद ,,
४९ श्री केसरबाई बावडा नवागाम
५० ब्रह्मचारिणी चिमनाबाई मांगूर
५१ मोहनचंद कालिदास डबका
५२ चंचलबाई चुनिलाल करमसद
५३ चंदुलाल मणिलाल कोठारी ईडर
५४ कोदरलाल गुलाबचद मोडासिया देरोल
५५ मगनलाल केवलदास ,,

५६ अमृतलाल तलकचंद देरोल
५७ नेमचंद नानचंद गाधी ,,
५८ { शहा पन्नालाल अखेचद
दोशी निहालचंद तलकचंद } विजयनगर
५९ स. सिं. गणपतलालजी खुरई
६० शाह पन्नालाल रतनलालजी ओवरी
६१ स. दि. जैन पंच जुना मंदिर सागवाडा
६२ से. रामचंदर सुखालालजी वरंगल
६३ स. दि. दसाहुमडपंच पालोदा
६४ श्री आचार्य कुंथुसागर सरस्वती भवन नवागाम
६५ दि. जैन मंदिर सरस्वती भवन पनागर
६६ सेठ लूणकरण मदनमोहनजी उज्जैन
६७ सर सेठ हूकुमचदजी K T इंदौर
६८ सेठ नगजी अमरचदजी देवल
६९ सेठ मणिलाल केवलजी देवल
७० गांधी लिलाचंद फतेहचंद जादर
७१ सेठ तेजपालजी छावडा कोछोर
७२ सेठाणी सुन्दराणीजीबाई खुरई
७३ ब्र. सुमतीबेन पोशीना
७४ शा. भोगीलालजी साबली
७५ दि. जैन मंदिर जांबुडी
७६ सेठ जीवराज हिराचंद आळंद
७७ दि. जैन मंदिर दाबोळ
७८ शा. फूलचंद ताराभाई पादरा
७९ दि. जैन मंदिर गटोडा
८० ब्र. विद्याधरजी
८१ दि. जैन मंदिर बदराह
८२ श्री शहा मगनलाल नानचंद सोनासन
८३ ,, मगनलाल पन्नालाल तलाटी दाहोद
८४ ,, रतनबाई दोशी रेवचद मगनलालनी विधवा नंदपूर
८५ सेठ गणेशलालजी उदयपुर
८६ ,, भट्टारक यशकीर्तिजी महाराज ऋषभदेव
८७ ,, दि. जैन पंच केसरिया
८८ ,, रेवचंद रखचद रखियाल
८९ गांधी जगरचंद फुलचद ,,
९० ,, शहा रेवचद खेमचंद ,,
९१ श्री छगनबाई जीतमलजी उदयपुर
९२ श्री. दाडमचद खुमजी डूंगरपुर
९३ श्री. लालचंद मोतीचंद जैन हस्ते ठाकुबाई पाटली डूंगरपुर
९४ श्री. से. कोठडिया साकरचंदजी और उनकी धर्मपत्नी चंदनबेन
९५ चुनीलाल गेवजी नागद्रा डूंगरपुर
९६ श्री भीमचंद टोडरमलजी उदयपुर

९७,,से. नवलचंद खूबचंद डूंगरपुर
९८श्री.मोगाबाई हेडमास्टरनी सागर
९९ दि. जैन मंदिर छाणी(बडोदा)
१०० श्रीमत सरकार रायरायां,महा-
महेंद्र श्री सर लक्ष्मणसिंहजी साहिब
के. सी एस. आई. डूंगरपुर नरेश
१०१श्रीकुंथुसागर दि. जैन बो.डूग.
१०२ दि. जैन डंडामदिर डूंगरपुर
१०३ ,, गोपीलाल मथरीलाल
पाटणी डूणवा
१०४ बीसपंथी कोठी श्रीसमेदशिखर
१०५श्रीमती केशरबाई जैन रतलाम
१०६ श्री दि. जैन मारवाडी मंदिर
शक्कर बाजार इंदौर
१०७,,दुर्गाप्रसाद नानकचद अमोहर
१०८,,चदनलाल हमीरचंद डूंगरपुर
१०९ ,, से. भुराचद जालमचद
नागदा माथुरामडा (डूंगरपुर)
११० ,, से. कुरीचंद जैन डूंगरपुर
,, से. कालीदास ,, ,,
१११,गांधी पूनमचद हेमराजजी ,,
११२ शा.गयचंद वेचरदास जहेर
११३ श्री.ठाकुर सा. प्रवीणसिंहजी
लक्ष्मणसिंहजी माणिकपुरनरेश
११४ श्री संघवी दलीचंद हरचदनी
वेवा श्रीशरेकूअरबाई सागवाडा
११५ दि. जैन मंदिर विजयनगर
११६ श्री केसरीमल गुलाब-
चदजी सामरलेल

११७श. सि. बाबूलाल पन्नालालजी
नागोद
११८ श्री दि. जैन पंच ओबरी
११९ श्री प्यारचंद पूनमचंद
हरावत कल्याणपूर
१२० श्री से. रूपचंद कुरीचंद
बाबाडिया थाना
१२१ ,, चोकचद दयालजी थाना
१२२ श्री समस्त दि. जैन पंचान,,
१२३,रेवचंद बहेचरदास पाटनाकुंवा
१२४ श्रीमती मणीबेन सुपुत्री
वेचरदास फतेचंद ईडर
१२५श्री सकेश्वरा देवचंद वीरचंद,,
१२६ ,, जीवराज लीलाचंद ईडर
१२७ श्री दि. जैन मंदिर पींट
१२८ श्री कोठारी दलीचद
केशवलाल पींट
१२९ ,, शकरलाल सोनीलाल
शाह कुंआ
१३०,हुकमचंद राजमल गलियाकोट
१३१ ,, सकुलाल जडावचंद ,,
१३२ ,, बजेचंद फूलचदभाई
छगनलाल शहा गलियाकोट
१३३ श्री से. गलालिया भोगीलाल
उत्तमलाल गलियाकोट
१३४ श्री पंचमहाजन ठाकल्या
१३५ श्री से. कुरीचंद दाडमचद
कोकापूर

१३६ ,, ,, वखेचंद रतनचंद
शाह खडगद।
१३७ ,, गुप्तदानी महाशय
१३८ श्री ब्र. जिनदासजी जबलपूर
१३९ समस्त पंचमहाजन बीछीवाडा
१४० श्री प्यारचंदजी कनवागांव
१४१ ,, म्याचदजी ,,
१४२ ,, चुन्नीलालजी
१४३ ,, दलीचंद थानागांव
१४४ श्रीसमस्त पंचमहाजन ,,
१४५ श्री समस्त पंच घाटाकेगांव
१४६ श्री गोकुलचद हुकमचद कटनी
१४७ श्री मेघचद अमरचद
सघवी रटोडा
१४८ श्री उदेचद आदि चारों भाई,,
१४९ श्री चंदुलाल कस्तुरचंद मुंबई
१५० ,, जगजीवनदास
कस्तुरचंद शाह ,,
१५१ ,, भाईचंद रूपचंद दोशी,,
१५२ दशाहुमड पंचमहाजन घाटोल
१५३ श्री से. न्यालचंद सज्जनल ल
व लालचद कचरजी घाटोल
१५४,,गांधी वखेचंद माणिकलाल
बांसवाडा
१५५,, गांधी चपालाल दीपचद,,
१५६ ,, चपालाल मगनलालजी,,
१५७ ,, टाली हीरालाल
भगवानदासजी ,,
१५८,सरिया विजयचंद मोतीचद,,
१५९ ,, विंदावन हेमराजजी
खमेरा दोहद
१६० ,, गांधी वखेचंद सुखलाल
१६१,,घोडा माणिकचंद सुखलालजी
१६२,, बाबू सज्जनलालजी
पो. मास्तर बांसवाडा
१६३ ,, उदेचंद दोवाचंद पचैट,,
१६४ ,, गांधी मोतीलाल
नाथुलालजी रतलाम
१६५ ,, शाहा लखमीचंद
रूपचद डुंगरपूर
१६६ ,, तलाटी शंकरलाल
मगनलाल प्रतापगढ
१६७ ,, सि धन्यकुमारजी कटनी
१६८,माणकलालजी पचोरी सावला
१६९,कोठाडिया साकरचंद डुंगरपूर
१७०,, बदामीलालजी सतरामपुर
१७१ ,, हीरालालजी पाटनी नवाई
१७२ ,, सेठ रावजी बापूचद
पदारकर सोलापूर
१७३ ,, श्री केशवलाल कस्तुर-
चदकी धर्मपत्नी कलोल
१७४ श्री. सिद्धक्षेत्र तारगा
१७५ श्री. सिद्धक्षेत्र पावागढ
१७६ श्री कोठारी चुनीलाल सुदर-
लालजी भगडा बांसवाडा
१७७ श्री दि. जैन मंदिर बोरी
१७८ ,, दोशी लामचद सुख-
लालजी बांसवाडा

श्रीआचार्य कुंथुसागर ग्रन्थमाला.

उद्देश—परमपूज्य आचार्यश्रीके द्वारा रचित ग्रंथोंका प्रकाशन व प्रचार करना व अनुकूलताके अनुसार इतर प्राचीन जैनग्रंथोंका उद्धार तथा प्रकाशन करना है।

सामान्य नियम.

१ इस ग्रंथमालाको जो सज्जन अधिकसे अधिक सहायता देना चाहेंगे वह सहर्ष स्वीकार की जायगी।

२ जो सज्जन १०१) या अधिक देकर इस ग्रंथमालाका स्थायी सभासद बनेंगे उनको ग्रंथमालासे प्रकाशित सर्वग्रंथ पोस्टेज खर्च लेकर विनामूल्य दिये जायेंगे।

३ जो सज्जन ५१) या अधिक देकर हितचिंतक बनेंगे उनको पोस्टेज व अर्धमूल्य लेकर प्रकाशित ग्रंथ दिये जायेंगे।

४ जो सज्जन २५) या अधिक देकर सहायक बनेंगे उनको पोस्टेज व लागतमूल्य लेकर प्रकाशित ग्रंथ दिये जायेंगे।

५ अन्य सज्जनोंको निश्चितमूल्यसे दिये जायेंगे।

६ ग्रंथोंके मूल्यसे आई हुई रकमका उपयोग ग्रंथमालाके द्वारा प्रकाशित होनेवाले ग्रंथोंके उद्धार में ही होगा।

७ ग्रंथमालाके ट्रस्टडीड होकर मुंबईमें वह रजिस्टर्ड होचुका है।

सहायता भेजनेका पता—सेठ गोविंदजी रावजी दोशी
ठि. रावजी सखाराम दोशी, मंगलवार पेठ, सोलापुर.

ग्रंथमालासंबंधी सर्व प्रकारका पत्रव्यवहार नीचे लिखे पतेपर करें

वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री
मंत्री–आचार्य कुंथुसागर ग्रंथमाला, सोलापुर.